❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंननकर ॥

वर्ष ६ | गौराब्द ४७५, मास—त्रिविक्रम १४, वार—वासुदेव रविवार, ३१ वैशाख, सम्वत् २०१८, १४ मई १९६१ | संख्या १२

श्रीश्रीवृन्दादेव्यष्टकम्

[श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्ति-ठक्कुर-विरचितम्]

श्रीवृन्दादेव्यै नमः

गाङ्गेय-चाम्पेय-तडिद्विनिन्दि-रोचिः-प्रवाह-स्नापितात्मवृन्दे !
बन्धूक-रन्धु-द्युति-दिव्यवासो वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥१॥

बिम्बाधरोदित्वर-मन्दहास्य-नासाग्र-मुक्ताद्युति-दीपितास्ये ।
विचित्र-रत्नाभरणाश्रियाढ्ये ! वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥२॥

समस्त-वैकुण्ठ-शिरोमणौ श्रीकृष्णस्य वृन्दावन-धन्य-धाम्नि ।
दत्ताधिकारे वृषभानु-पुत्र्या वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥३॥

त्वदाज्ञया पल्लव-पुष्प-भृङ्ग मृगादिभिर्माधव-केलिकुञ्जाः ।
मध्वादिभिर्भान्ति विभूष्यमाणा वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥४॥

त्वदीय-दूत्येन निकुञ्ज-यूनो-रत्युत्कयोः केलि-विलास-सिद्धिः ।
त्वत्-सौभगं केन निरुच्यतां तद् वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥५॥

रासाभिलाषो वसतिश्च वृन्दावने स्वदीयाङ्घ्रि-सरोज-सेवा ।
लभ्या च पुंसां कृपया तवैव वृन्दे ! नुमस्ते चरणार विन्दम् ॥६॥
त्वं कीर्त्यसे सात्वत-तन्त्रविद्भि-र्लीलाभिधाना किल कृष्ण-शक्तिः ।
तवैव मूर्त्तिस्तुलसी नृलोके वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥७॥
भक्त्या विहीना अपराध-लक्षैः क्षिप्ताश्च कामादि-तरंगमध्ये ।
कृपामयि ! त्वां शरणं प्रपन्ना वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥८॥
वृन्दाष्टकं यः श्रृणुयात् पठेद्, वा वृन्दावनाधीश-पदाब्ज-भृङ्गः ।
स प्राप्य वृन्दावन-नित्यवासं तत्-प्रेमसेवां लभते कृतार्थः ॥९॥

अनुवाद—

हे अतिशय उज्ज्वल लाल रङ्गके वस्त्रोंको धारण करनेवाली वृन्दे ! तुम अपनी परम सुन्दर अङ्ग-कान्ति द्वारा स्वर्ण, चम्पक-पुष्प और सौदामिनीका भी तिरस्कार कर रही हो एवं स्वजनोंको अर्थात् कृष्ण भक्तोंको अभिषिक्त कर रही हो। हम तुम्हारे श्रीचरण कमलोंको नमस्कार करते हैं ॥१॥

हे वृन्दे ! विम्बके समान लाल-लाल होठोंसे निकली हुई तुम्हारी मधुर मुसकान और नासिका-प्रवर्त्ती मुक्ता-कान्ति द्वारा तुम्हारा वदन मण्डल अतिशय शोभित हो रहा है एवं विचित्र रत्नमय आभरणोंको धारण कर परम सौन्दर्यशालिनी हो रही हो; हम तुम्हारे श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं ॥२॥

हे वृन्दे ! वृषभानुराजनन्दिनी श्रीराधिकाने निखिल वैकुण्ठ-समूहके शिरोमणि और अशेषगुण-समन्वित परम पवित्र श्रीकृष्णके प्रियधाम श्रीवृन्दावन में तुमको अधिकार दिया है; हम तुम्हारे श्रीचरण-कमलोंको नमस्कार करते हैं ॥३॥

हे वृन्दे ! तुम्हारी आज्ञासे ही वृन्दावनमें पत्र, पुष्प, भ्रमर, मृग, मयूर, और शुक-सारिका आदि पशु-पक्षियोंमें तथा चिर वसन्तमें श्रीकृष्णका केलि-कुञ्ज-समूह विभूषित होकर परम शोभाको प्राप्त हो रहा है; हम तुम्हारे श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं ॥४॥

हे वृन्दे ! दूतीत्वके चातुर्य-प्रभावसे ही विलास-वासनामयी श्रीराधाकृष्ण-केलि-विलास सम्पन्न हुआ करते हैं अर्थात् तुम ही दूतीके रूपमें श्रीराधा-गोविन्द का सुदुर्घट मिलन सम्पादन कराती हो, उनके लीला-विलासमें सहायता किया करती हो; अतएव इस संसारमें तुम्हारे सौभाग्यकी सीमाका कौन वर्णन कर सकता है ? हम तुम्हारे श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं ॥५॥

हे वृन्दे ! कृष्णभक्तगण तुम्हारी ही कृपासे श्रीरासलीला-दर्शनाभिलाष, श्रीवृन्दावनमें वास और तुम्हारे प्राणवल्लभ श्रीराधा-माधवकी चरण-सेवा प्राप्त करते हैं; हम तुम्हारे चरणकमलोंको नमस्कार करते हैं ॥६॥

हे वृन्दे ! श्रीनारद आदि भक्तोंद्वारा रचित तंत्रोंमें सुनिपुण पण्डितोंने तुमको श्रीकृष्णकी लीला-शक्ति बतलाया है और इस नरलोकमें सुप्रसिद्ध वृक्षरूपिणी श्रीतुलसी देवी तुम्हारी ही मूर्त्ति हैं; हम तुम्हारे श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं ॥७॥

हे कृपामयी देवि ! हम भक्तिहीन होनेके कारण सैकड़ों अपराधोंसे पूर्ण भवसमुद्रकी काम-क्रोधादि-रूप भीषण तरङ्गोंमें निक्षिप्त हैं; अतएव हम तुम्हारी शरणमें आये हैं; तुम कृपा कर इस सुदुस्तर भवसागर से हमारा उद्धार करो; हम तुम्हारे श्रीचरणकमलोंको नमस्कार करते हैं ॥८॥

जो व्यक्ति वृन्दावनाधिपति श्रीश्रीराधा-गोविन्द के चरणकमलोंका भृंग स्वरूप होकर श्रीवृन्दादेवीके इस अष्टकका पाठ या श्रवण करते हैं; वे श्रीवृन्दावन में नित्य-निवास प्राप्त कर श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्रेम-सेवा लाभ कर कृतार्थ हो जाते हैं ॥९॥

अपनी दो-एक बातें

श्रीगौरसुन्दर स्वयं भगवान—परतत्त्व हैं। उनका उपदेश-वाक्य ही उनका श्रीअङ्ग है, समय-समय पर उनकी वाणियोंके प्रचारक ही उनके उपांग हैं, श्रीगौर-चन्द्रकी शिक्षा ही अस्त्र है, श्रीचैतन्य-वाणीमें अवस्थित श्रीहरिजन ही उनके पार्षद हैं। अतएव आवरणके साथ अर्थात् अङ्ग, उपांग, पार्षद आदिके साथ श्रीगौर सुन्दरकी पूजाके उद्देश्यसे शुद्धाशुद्ध गौड़ीयगण और उनके सर्वस्व गौड़ीयानाथकी पूजाके माध्यम देश-विदेशके प्रचारकोंके निकट मैं अपनी दो-एक बातें आज निवेदन करना चाहता हूँ।

मेरे प्रभुके प्रभुने हमें जो शिक्षाएँ दी हैं, उनमें हम ये कतिपय महावाक्य पाते हैं—(१) तृणादपि सुनीच, (२) वृक्षके समान सहिष्णु, (३) अमानी और (४) मानद होकर निरन्तर हरिकीर्त्तन करना ही जीवका परम धर्म है। मेरे श्रीगुरुदेवने इन चारों महावाक्यों की ही जीवन्त मूर्त्ति प्रकाश कर मुझे अपने श्रीचरकमलोंमें आकर्षण किया। मैं भी अपने बन्धुओंको इस अव्यर्थ प्रणालीका अनुसरण करके ही जगतके समस्त जीवोंको वास्तव सत्यके पादपीठकी ओर खींच लानेका परामर्श दे रहा हूँ।

त्रिदण्डिकुल चुड़ामणि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामीपादने "दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य, कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवीमि। हे साधवः सकलमेव विदाय दूरात्, चैतन्यचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम्"—इस उपदेश द्वारा त्रिदण्डि भिक्षुओंके लिये जिस प्रकारकी प्रचार-प्रणालीकी शिक्षा दी है, मैं भी महाजनोंका पदाङ्कानुसरण करके अपने बन्धुवर्ग को उसी प्रकारकी प्रचार-प्रणाली अनुसरण करनेके लिये ही निवेदन कर रहा हूँ।

श्रीचैतन्यदेव जगत्के सभी शिक्षकोंके परम शिक्षक और सबसे श्रेष्ठ बुद्धिमत्ताके आदर्श हैं। वे हमें अपने शिक्षाष्टकमें जो 'चेतोदर्पणमार्जन' का उपदेश दिये हैं, हमें उसीका अनुकीर्तन करना होगा। हम औन-वाणीके वाहकमात्र हैं। हमें अपनी किसी प्रकार की दांभिकता करने या व्यर्थके अहंकार करने का अवसर नहीं, हमें यह बात सदा-सर्वदा स्मरण रखनी होगी।

हमें जगतके सभी लोगोंको उनका प्राप्य सम्मान और अधिकार प्रदान करनेमें कुंठित नहीं होना चाहिए। हम लोग सबके निकट ही कृष्णभक्तिका वर प्रार्थना करेंगे। संसारमें जितने प्रकारके भी अनुकूल और प्रतिकूल चरित्र हमारे सामने क्यों न उपस्थित हों, हम सभीको यथायोग्य सम्मान प्रदान कर अपने इष्टदेवकी प्रेमसेवा करते रहेंगे। हमारे शिक्षणीय व्रजवासियोंकी परमोच्च धाराका यही मंत्र है—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरी।
नन्दगोप सुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥
वृन्दावनावनिपते जय सोम सोम-
मौले सनन्दन-सनातन-नारदेड्य।
गोपेश्वर व्रजविलासियुगाङ्घ्रि-पद्मे
प्रीतिं प्रयच्छ नितरां निरुपाधिकां माम्॥

हमें पृथ्वी पर सर्वत्र और सब प्रकारके लोगोंके निकट हरिकीर्तन प्रचार करते समय बहुत कुछ देखना, सुनना और सीखना पड़ेगा। किन्तु हमें इस बातको कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारे श्रीश्रीगुरुदेवमें ये समस्त विषय अपाश्रित भावमें उनकी सेवाकी पुष्टिके लिये विद्यमान हैं। ऊँचासे ऊँचा जागतिक ज्ञान और ऊँचीसे ऊँची जागतिक शिक्षा यदि श्रीगुरुपादपद्मकी धूलि कणके पीछे उनकी सेवाके लिये उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करे, तभी उनकी सार्थकता है, अन्यथा वे माया-मरीचिका मात्र हैं—इसे सर्वदा स्मरण रखना होगा।

हमारे जो बन्धुवर्ग श्रीचैतन्यवाणीका प्रचार करनेके लिये पाश्चात्य देशोंमें जा रहे हैं, उन्हें मैं अपने प्रभु श्रीरूप गोस्वामी की दो वाणियोंका पुनः स्मरण करा देना अपना कर्तव्य समझता हूँ—

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयूञ्जतः ।
निर्बन्धः कृष्ण सम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ॥
प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते ॥

श्रीसनातन गोस्वामी प्रभुने "जयति-जयति नामानन्द मुरारे" आदि श्लोकोंमें वेदान्तके फलपाद के "अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्"—सूत्रकी जो व्याख्या की है, हमारे बन्धुजन सबको मान प्रदान करते हुए निरन्तर उसीका अनुकीर्तन करें, यही मेरा अनुरोध है।

आप जिस जातिके लोगोंके निकट हरिकीर्त्तनका प्रचार करनेके लिये जा रहे हैं, वे जागतिक समस्त विषयोंमें उन्नतिके शिखर पर चढ़े हुए है। वे विचार परायण हैं, सौजन्य आदि गुणोंसे विभूषित हैं और अनेक विषयोंमें श्रेष्ठ एवं गौरवान्वित हैं। अतएव उनके निकट सद्युक्ति और सद्विचारोंकी अकृत्रिम प्रदर्शनी उन्मुक्त करने पर वे श्रौत-वाणीके श्रेष्ठ ग्राहक बनेंगे। इस विषयमें हमें दृढ़ आशावादी होना उचित है। हम सहिष्णुता धर्मका अवलम्बन कर निष्कपट होकर हरिकीर्तन करेंगे। इसका असर उन जातियों पर होना अनिवार्य है।

हम किसी प्रतिद्वंद्विता या प्रतियोगिताके लिये प्रचार कार्यमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं—यह बात हमें सर्वदा याद रखनी होगी। हम लोग केवल यथार्थ सत्यके प्रचारके लिये सत्यानुरागियोंके द्वार-द्वार पर जायेंगे। लोगोंके आदर या अनादरसे हमें घबड़ाना उचित नहीं। हम अपने प्रभुकी निष्कपट सेवा करके उनके सुखके लिये ही सर्वदा सचेष्ट रहेंगे।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हम किसी विशेष व्यक्ति के जागतिक पाण्डित्य और कुलीनता अथवा उसकी मूर्खताके प्रति कटाक्ष करनेके लिये प्रचार क्षेत्रमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं। यह तो स्वरूप भ्रान्तिकी अवस्था है। जगतके सब लोग वास्तवमें ही समस्त जागतिक विषयोंमें हमसे बढ़े-चढ़े हैं। वे सांसारिक द्रव्य हमें नहीं चाहिए। हम तो केवल श्रीचैतन्यवाणी के कीर्तनकारी त्रिदण्डिभिक्षुक मात्र हैं। हमें तो श्रीहरिगुरु वैष्णवोंकी सेवाके सुखके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिए।

हम यंत्री नहीं हैं, यंत्र मात्र हैं, हमें इस बातको सदा याद रखनी चाहिए। त्रिदण्डि भिक्षुक श्रीचैतन्यके जीवन्त मृदङ्ग हैं। श्रीगुरुपादपद्मोंके आश्रयमें हम सदा बजते रहेंगे। श्रीगुरु-वैष्णवके अनुक्षण आनुगत्य और श्रौत वाणीको जीवनका ध्रुवतारा बना कर हमें भगवान गौर सुन्दरकी आदेश वाणीकी विजय पताकाको फहराकर परिव्राजक-धर्मका पालन करना होगा।

हमें सर्वदा स्मरण रखना होगा कि एकमात्र गुरु-गौराङ्गके मनोभिष्ट-प्रचारके लिये ही हमने परिव्राजक का व्रत ग्रहण किया है। श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंके आनुगत्यमें निरन्तर कीर्त्तन-व्रतमें दीक्षित रहनेसे व्यर्थके भ्रमणकी पिपासा या अन्याभिलाषकी प्रच्छन्न मूर्त्ति हमारे हृदयमें किसी प्रकार कोई उपद्रव करनेका साहस नहीं कर सकती।

श्रीगौर नाम, श्रीगौर धाम और श्रीगौर कामका सेवा-व्रत ही हमारा नित्य धर्म है। हम त्रिदण्डि भिक्षुक हैं, विश्वमें सर्वत्र श्रीमठका प्रकाश-विग्रह प्रकट करनेके लिये माधुकरी भिक्षा ही हमारा अवलम्बन है। हम भोगी या त्यागी नहीं हैं, हम अप्राकृत परमहंसकुल की पादुकाको वहन करनेकी आकांक्षाको ही सर्वोच्च आकांक्षा मानते हैं।

हम तृणसे भी अधिक सुनीच होकर सबको यह बतलावेंगे कि विकृत प्रतिफलित राज्यकी आंशिक स्वतंत्रताके अधिकारकी अपेक्षा अप्राकृत वास्तव सत्य के प्रति सम्पूर्ण निर्भरता ही स्वाधीनताकी सच्ची और सर्वोत्तम मूर्त्ति है। "रक्षिष्यतीति विश्वासो" श्रीरूपानुमोदित शरणागतिको मूलमंत्र कर हम सर्वदा श्रीहरिसंकीर्तन में नियुक्त रहेंगे।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

श्रीपुरुषोत्तम मासके कृत्य

पुरुषोत्तम मासमें पालनीय नियमोंके सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने लिखा है—

हविष्यान्नं च भुंजीत प्रयतः पुरुषोत्तमे ।
गोधूमाः शालयः सर्वाः सिता मुद्गा यवास्तिलाः ॥
कलाय-कंगुनी-वारा वास्तुकं हिलमोचिका ।
आर्द्रकं काल-शाकञ्च मूलं कन्दञ्च कर्कटीम् ॥
रंभा सैन्धव-सामुद्रे लवणे दधि-सर्पिषी ।
पयोऽनुद्धृत-सारञ्च पनसाम्र-हरितकी ॥
पिप्पली-जीरकञ्चैव नागरं चैव तिन्तिडी ।
क्रमुकं लवली-धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् ॥
अतैल-पक्वं मुनयो हविष्यं प्रवदन्ति च ।
हविष्य-भोजनं नृणामुपवास-समं विदुः ।

व्रतका पालन करने वालेको हविष्यान्न भोजन करना चाहिए। गेहूँ, चावल, शालि-तण्डुल, मूँग, जौ, तिल, मटर, बथुआ, शहतूत, ककड़ी, केला, कन्द, कटहल, आम, आँवला, अदरख, घी, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, सुपारी, सेंधा नमक, इमली, ईखसे बनी चीनी, मिश्री और बिना तेलसे बने व्यंजन—ये सब हविष्यान्न भोजन और उपवास दोनोंका एक ही प्रकारका फल होता है।

परित्याज्य वस्तु और आचरण

"सर्वामिषाणि मांसञ्च क्षौद्रं सौवीरकं तथा ।
राजमासादिकं चैव राजिका मादकं तथा ॥
द्विदलं तिल-तैलञ्च तथान्नं शाक्य-दूषितम् ।
भाव-दुष्टं क्रिया-दुष्टं शब्द-दुष्टं च वर्जयेत् ॥
परान्नञ्च परद्रोहं पर-दार-गमं तथा ।
तीर्थं विना प्रयाणंच परदेशं परित्यजेत् ॥
देव वेद-द्विजानांच गुरु-गो-व्रतिनां तथा ।
स्त्री-राज-महतां निन्दा वर्जयेत् पुरुषोत्तमे ॥"

सब प्रकारकी मछली और आमिष जातीय द्रव्य, मांस, मधु, सेम, राई, सरसों और सब प्रकारके मादक द्रव्योंका परित्याग करो। मसूर और कलाई (उड़द) की दाल, तिल, तैल, कंकड़ युक्त अन्न, भाव-दुष्ट, क्रिया-दुष्ट और शब्द-दुष्ट पदार्थोंका वर्जन करो। बासी अन्नका भोजन, परद्रोह, पर-स्त्री-गमन, तीर्थ यात्राको छोड़ कर दूर देश या परदेशमें गमन—इन सबका परित्याग करना चाहिए। पुरुषोत्तम मासमें देवता, वेद, गुरु, गो, व्रती मनुष्यों, स्त्रियों, राजा और सज्जनों की निंदा नहीं करनी चाहिए।

आमिष किसे कहते हैं ?

"प्राण्यङ्गमामिषं चूर्णं फले जम्बीरमामिषम् ।
धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ॥
अजा-गो-महिषी-दुग्धादन्य-दुग्धादि चामिषम् ।
द्विज-क्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥
ताम्र-पात्रस्थितं गव्यं जलं चर्मणि संस्थितम् ।
आत्मार्थं पाचितं चान्तमामिषं तद्बुधैः स्मृतम् ॥

जीव-जन्तुओंके अङ्गसे प्रस्तुत किया हुआ चूर्ण, जंबीरी नीबू, मसूर, दूषित या बासी अन्न; बकरी, गाय और भैंसके दूधके अतिरिक्त अन्य दूध, मिट्टीसे तैयार किया गया नमक, ताँबे के बर्तनमें गायका दूध, चमड़ेमें रखा हुआ पानी अर्थात् भिस्तीका पानी, और केवल अपने लिये ही पकाया हुआ अन्न—यह सब आमिष माना गया है। पुरुषोत्तम मासमें इनका वर्जन करना चाहिए।

"रजस्वलां त्यजन् म्लेच्छ-पतितैर्वास्यकैः सह ।
द्विज-द्विट्-वेद-बाह्यैश्च न वदेत् पुरुषोत्तमे ॥
एभिः दृष्टं च काकैश्च सूतकान्नं च यद्भवेत् ।
द्विपाचितं च दग्धान्नं नैवाद्यात् पुरुषोत्तमे ॥
पलाण्डुं लशूनं मुस्तां छत्राकं गृंजनं तथा ।
नालिकं मूलकं शीघ्रं वर्जयेत् पुरुषोत्तमे ॥
यद्-यद् यो वर्जयेत् किंचित पुरुषोत्तम तुष्टये ।
तत्पुनर्ब्राह्मणे दत्वा भक्षयेत् सर्वदैव हि ॥"

रजस्वला स्त्री, म्लेच्छ, पतित, धर्मभ्रष्ट संस्कार-शून्य, द्विज-द्रोही और वेद-निंदक—इनसे बातचीत नहीं करनी चाहिए। ऐसे लोगों, कुत्तों और कौवों की दृष्टिसे दूषित अन्न, सूतकका अन्न, दुबारा पकाया हुआ अन्न तथा जलाया हुआ अन्न या पदार्थ नहीं खाना चाहिए। प्याज, लहसुन, नागरमोथा, छत्री, गाजर और सजना आदि का त्याग करना चाहिए।

पुरुषोत्तम, कार्तिक और माघ—इन तीनों मासोंके एक ही कृत्य हैं

"ब्रह्मचर्यमधः शय्यां पत्रावह्यांच भोजनम्।
चतुर्थकाले भुक्तिं च प्रकुर्यात् पुरुषोत्तमे॥
कुर्यादेतांश्च नियमान् व्रती 'कार्त्तिकमाघयोः'।
पुण्येह्नि प्रातरुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः॥
गृह्णीयान्नियमं भक्त्या श्रीकृष्णञ्च हृदि स्मरन्।
उपवासस्य नक्तस्य चैकभुक्तस्य भूपते॥
एवञ्च निश्चयं कृत्वा व्रतमेतत् समाचरेत्॥"

पुरुषोत्तम मासमें ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए अर्थात् स्त्री-प्रसङ्गसे सर्वथा दूर रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त जमीन पर सोना, पत्तलमें भोजन यथा चतुर्थयाममें भोजन करना उत्तम है। कार्त्तिक और माघ मासमें भी इन्हीं नियमोंके अनुसार व्रत-पालन करना चाहिए। प्रातःकाल उठ कर पौर्वाह्णिकी क्रिया करके श्रीकृष्णको भक्तिपूर्वक हृदयमें स्मरण कर पूर्वोक्त नियमोंको ग्रहण करना चाहिए। व्रत तीन प्रकारके होते हैं—अर्थात् उपवास, नक्त हविष्यान्न ग्रहण और एक बार भोजन। इन तीनोंमेंसे व्रत-आचरणकारीके लिये जो करणीय जान पड़े उसे स्थिर कर व्रतका आचरण करना चाहिए।

पुरुषोत्तम मासमें श्रीभागवत-श्रवण और व्रत-पालनका फल

श्रीमद्भागवतं भक्त्या श्रोतव्यं पुरुषोत्तमे॥
तत्पुण्यं वक्तुमा वक्तुं विधाता हि न शक्नुयात्।
शालग्रामार्चनं कार्यं मासे श्रीपुरुषोत्तमे॥
एतन्मासव्रतं राजन् श्रेष्ठं क्रतुशतादपि।
क्रतुं कृत्वाप्नुयात् स्वर्गं गोलोकं पुरुषोत्तमे॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि क्षेत्राणि सर्वदेवताः।
तद्देहे तानि तिष्ठन्ति यः कुर्यात् पुरुषोत्तमम्॥

श्रीपुरुषोत्तम मासमें भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतका श्रवण करना चाहिए। श्रीमद्भागवत श्रवणका पुण्य स्वयं विधाता—ब्रह्मा भी नहीं बतला सकते। उस समय भक्तजन श्रीशालग्राम शिलाका अर्चन करेंगे। इस मासका व्रत यज्ञकी अपेक्षा भी अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि यज्ञसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और पुरुषोत्तम व्रतका पालन करने वालों के शरीरमें सभी तीर्थ, सभी क्षेत्र और सभी देवता निवास करते हैं।

दीपदान और उसका फल

"कर्त्तव्यं दीप दानंच पुरुषोत्तम-तुष्टये।
तिल-तैलेन कर्त्तव्यं सर्पिषा वैभवे सति॥
तयोर्मध्ये न किंचित्ते कानने वसतोऽधुना।
इंगुदीजेन तैलेन दीपः कार्यस्त्वयानघ॥
योगो ज्ञानं सांख्यं संत्राणि सकलान्यपि।
पुरुषोत्तम दीपस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

पुरुषोत्तमकी प्रीतिके लिये दीप प्रदान करना कर्त्तव्य है। धन रहने पर घीका दीपक देना चाहिए अन्यथा तिल-तेलका देना चाहिए। हे मनि-ग्रीव! तुम्हारे वनवासमें घी या तिल तेल—ये दोनों नहीं मिल सकेंगे; अतएव तुम इंगुदि-तैलका प्रदीप दान कर सकते हो। अष्टाङ्ग योग, ब्रह्मज्ञान और सांख्यज्ञान एवं समस्त तांत्रिक क्रिया—ये सब पुरुषोत्तम मासमें दीपदानकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं होते।

पुरुषोत्तम मासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नवमी और अष्टमी तिथियोंका विशेष महत्व

इस व्रतके उद्यापन (समाप्तिपर किया जानेवाला कृत्य) के सम्बन्धमें वाल्मीकिजी कहते हैं—महाराज! कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नवमी या अष्टमी तिथिको पुरुषोत्तम मासमें इस व्रतका उद्यापन करना चाहिए।

विशुद्ध भक्त-ब्राह्मणको निमन्त्रित करके स्थिर-चित्तसे उद्यापन क्रिया करनी चाहिए। पंच-धान्योंसे अतिशय सुन्दर सर्वतोभद्र मण्डलकी रचना करनी चाहिए। मण्डलके ऊपर चार कलस स्थापन करके चतुर्व्यूहकी प्रीतिके लिये उनके ऊपर फल (नारियल आदि) रखना चाहिए। सुन्दर वस्त्रोंमें लपेटे हुए पान द्वारा चतुर्व्यूहकी स्थापना करनी चाहिए। श्रीराधामाधवको कलसके साथ स्थापन करना चाहिए। चतुर्व्यूहका जप करके चारों दिशाओंमें चार प्रदीप प्रज्ज्वलित करना चाहिए।

अर्घ्य-मंत्र और नमस्कार-मंत्र

क्रमानुसार श्रद्धाभक्तिपूर्वक पत्नीके साथ नारियल आदिका अर्घ्य देना चाहिए। अर्घ्यका यह मन्त्र है—

देव-देव नमस्तुभ्यं पुराण-पुरुषोत्तम ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहित हरे ॥

इसी नीचेके मन्त्रसे नमस्कार करना चाहिए—

वन्दे नवघन-श्यामं द्विभुजं मुरलीधरम् ।
पीताम्बरधरं देवं साराधं पुरुषोत्तमम् ॥

नीराजन, ध्यान और पुष्पांजलिका मंत्र

उसके पश्चात तिलसे होम करके नीराजन करना चाहिए। नीराजन-मन्त्र इस प्रकार है—

"निराजयामि देवेशमिन्दीवर दलच्छविम् ।
राधिका-रमणं प्रेम्णा कोटि-कन्दर्प सुन्दरम् ॥

ध्यानका मन्त्र

अन्तर्ज्योतिरनन्त-रत्न-रचिते सिंहासने संस्थितम्।
वंशीनाद-विमोहित-व्रजवधू वृन्दावने सुन्दरम् ॥
ध्यायेद् राधिकया सकौस्तुभमणि-प्रद्योतितोरस्थलम् ।
राजद्रत्न-किरीट-कुण्डलधरं प्रत्यग्र-पीताम्बरम् ॥

इस प्रकार ध्यान करके पुष्पाञ्जलि देना चाहिए और नीचे के मन्त्रसे नमस्कार करना चाहिए—

"नौमि नवघनश्यामं पीतवाससमच्युतम् ।
श्रीवत्स-भासितोरस्कं राधिका सहितं हरिम् ॥"

इन सबके पश्चात् भक्त ब्राह्मणको पूर्णपात्र दान करके आचार्यको दक्षिणा देनी चाहिए। उसके बाद दान करना चाहिए। इस समय उपयुक्त वैष्णव-ब्राह्मणको श्रीमद्भागवत दान करनेकी विधि है। ब्राह्मणको संपुटित काँसेका बर्तन देना चाहिए। उसके बाद ब्राह्मणोंको घृत-पायस (खीर) भोजन करना चाहिए। अन्तमें सबको प्रसादका अन्न वितरण कर अपने स्वजनोंके साथ भोजन करना चाहिए। उद्यापनपूर्वक व्रतके नियमोंका परित्याग करना चाहिए।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर।

चेतावनी

मनुवा चेत रे चेत ॥
अबके चेते कभी न चेते, काहे रहे अचेत ।
काल खड़ा तेरे सिर पै, हरि को नाम न लेत ॥
हरि नाम में सबरे रस हैं, पीवत ही सुख देत ।
'सुशील' श्याम चेत ले मनुवा,सींच ले अपनो खेत ॥

—श्रीसुशीलचन्द्र त्रिपाठी, एम. ए. साहित्यरत्न।

पुरुषोत्तम-व्रत

पुरुषोत्तममास और मलमास (अधिकमास)

श्रीहरिभक्तिविलासके अनुसार पुरुषोत्तम मासमें ही पुरुषोत्तम व्रत हुआ करता है। इस वर्ष १ ज्येष्ठ, १५ मई, सोमवारसे ३० ज्येष्ठ,१३ जून मङ्गलवार तक पुरुषोत्तम मास है। स्मार्त्त लोग इसे मलमास या अधिकमास कहते हैं। यही नहीं, वे लोग इस अधिमासको 'मलिम्लुच' (चोर) मलिनमास आदि नाम देकर घृणा प्रकाश करनेमें भी कुंठित नहीं होते। उनके विचारके अनुसार इस महीनेमें कोई भी शुभ कर्म नहीं किया जा सकता है। इसीलिये यह महीनोंमें मध्य मल-स्वरूप है। अतएव उन्होंने साधारण जनतामें इस अधिकमासको मलमासके नामसे ही प्रसिद्ध कर रखा है। परन्तु स्मार्त्तोंके इस विचारको वैष्णव-समाज किसी प्रकार भी अनुमोदन नहीं करता है।

हमारे देशमें दो प्रकारके शास्त्र परिलक्षित होते हैं। लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार शास्त्रोंकी युक्तियोंके ग्रहण करते हैं। इसलिये परमार्थिक-शास्त्र स्मार्त्तशास्त्रसे अलग हैं। जो लोग विषय भोगोंको भोगनेके लिये कर्ममार्गमें प्रवेश करते हैं, वे ही स्मार्त-शास्त्रोंका आदर करते हैं। ऐसे स्मार्त-मतके अनुसार ही मलमास या अधिमासका एक महीना निष्क्रिय होकर बिताये जानेकी विधि है। शरीर और मन निष्क्रिय रहने पर ही शैतान वहाँ पर अपना अड्डा जमा लेता है। स्मार्तों या कर्मियोंको पीड़ित करनेके लिये इसी समय शैतानको सुवर्ण सुयोग प्राप्त होता है।

वैष्णव जन अपना एक क्षणका समय भी हरि-सेवाके अतिरिक्त किसी दूसरे कर्मोंमें गँवाते नहीं हैं। वैष्णव लोग जिन भक्ति-अङ्गोंका आचरण करते हैं, उनमें 'अव्यर्थकालत्व' एक प्रधान भक्त्यंग है। श्री-पुरुषोत्तम मास २ वर्ष, ८ महीना, १६ दिन, ४ घंटेके बाद एक बार आविर्भूत होते हैं। अतएव वैष्णवोंके लिये यह मलमास नहीं, बल्कि प्रचलित बारह महीनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ मास है। यहाँ तक कि द्वादश मासोंके मध्य वैशाख, कार्त्तिक और माघ—इन तीन पवित्र महीनोंसे भी बढ़ कर इस अधिक मास-की महिमा नारदीय पुराणोंमें बतलायी गयी है।

पुरुषोत्तम मासके सम्बन्धमें नारदीय पुराण

बारह सौर मासोंके साथ बारह चान्द्र मासोंका मेल रखनेके लिये प्रति ३२ माह, १६ दिन और ४ घन्टोंके बाद एक चान्द्र मास अर्थात् एक अमावस्यासे लेकर दूसरी अमावस्या तक एक अधिक मास स्वी-कार करना पड़ता है। स्मार्त्त मतमें इस अधिक मास-को वर्षका मल माना गया है। इस अधिक मासके सम्बन्धमें नारदीय पुराणमें एक आख्यायिकाका वर्णन है। वह आख्यायिका इस प्रकार है—एक समय दूसरे-दूसरे मासोंका अधिपत्य और स्मार्त्तोंके द्वारा अपनी उपेक्षा देख कर 'अधिक-मास' बड़े दुःखित हुए और वैकुंठपति नारायणके चरणोंमें उपस्थित होकर अपने दुःखका कारण निवेदन किये। श्री-वैकुंठनाथको उस पर बड़ी दया आयी। वे उसे साथ लेकर गोलोकमें स्वयं भगवान् कृष्णके पास पहुँचे और अधिक मासका दुःख दूर करनेके लिये प्रार्थना किये। उनकी प्रार्थनाको सुन कर श्रीकृष्णने नारायण-से मुसकरा कर कहा—रमापते! जैसे मैं जगत्में पुरुषोत्तमके नामसे विख्यात हूँ, उसी प्रकार यह अधिक मास भी संसारमें 'पुरुषोत्तम मास'के नामसे प्रसिद्ध होगा। आजसे मैंने अपने सारे गुणोंको इस मासमें स्थापन कर दिया। यह मेरी सादृश्यताको प्राप्त करके अन्य सब मासोंका अधिपति होगा—जो व्यक्ति निष्काम होकर अथवा समस्त प्रकारकी कामनाओंसे मुक्त होकर भी इस मासमें मेरा पूजन

करेगा, वह समस्त प्रकारके सुखोंको भोगता हुआ अन्तमें मुझको ही प्राप्त होगा। दूसरे मास सकाम हैं, यह मास निष्काम है अर्थात् कामनावाले मनुष्य फल भोगकी कामनाको पूर्ण करनेके लिये प्रचलित बारह चान्द्र मासोंमें नाना-प्रकारके सकाम कर्मोंके अनुष्ठानमें लिप्त रहते हैं, परन्तु इस अधिक मासमें वैसे सकाम पुरुषोंकी किसी कामनाकी पूर्ति न होनेके कारण यह मास निष्काम है। इसलिये निष्काम भगवद्भक्तगण इस पुरुषोत्तम मासमें भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करने पर धन-जन, पुत्र-परिवार आदिका सुख अनायास ही (स्वयं ही) प्राप्त करते हैं और अन्तमें वे (पुरुषोत्तम मासमें मेरी पूजा करने वाले) मुक्ति लाभ कर नित्यानन्दमय गोलोकवासी होंगे—

अहमेतैर्यथा लोके प्रथितः पुरुषोत्तमः।
तथायमपि लोकेषु प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
अस्मै समर्पिताः सर्वे ये गुणा मयि संस्थिताः।
मत्सादृश्यमुपगम्य मासानामधिपो भवेत्॥
जगत्पूज्यो जगद्वन्द्यो मासोऽयं तु भविष्यति।
सर्वेमासाः समामाश्च निष्कामोऽयं मया कृतः॥

* * *

येनाहमर्चितो भक्त्या मासेऽस्मिन् पुरुषोत्तमे।
धन-पुत्र-सुखं भुक्त्वा पश्चाद्गोलोक-वासभाक्॥

(नारदीय पुराण)

अतएव स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने वैकुण्ठाधिपति नारायणकी प्रार्थनासे अधिक मासकी सर्वोत्तमताको आत्मकल्याणकामी जीवोंके निकट जनाया। इसी-लिये सर्वशास्त्रोंमें पारंगत वैष्णव पण्डितगण अधिक मासको 'पुरुषोत्तम मास मानते हैं और इसी मासमें पुरुषोत्तम व्रतका पालन करते हैं। इस व्रतमें कार्त्तिक व्रतके समस्त नियम ही सर्वतोभावसे पालनीय हैं। आहार-विहारके सम्बन्धमें भी एक ही प्रकारकी विधि अवलम्बनीय है। विशेष विधि और निषेध जाननेके लिये इसी संख्यामें "श्रीपुरुषोत्तम मासके कृत्य" नामक लेखका पाठ करें। वह लेख जगद्गुरु श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर द्वारा लिखा गया है।

सात्त्विक शास्त्रोंका श्रेष्ठत्व

कोई-कोई ऐसा कह सकते हैं कि यदि किसी शास्त्रमें अधिकमासको मलमास अथवा मलिम्लुच या मलिनमास कहा गया हो, तो वैष्णवगण उसे क्यों नहीं स्वीकार करते ? इस विषयमें हमारा यह कहना है कि इस अधिकमासको शास्त्रोंमें पुरुषोतम मास भी तो कहा गया है। अब यह देखना है कि इन दो प्रकारके शास्त्रोंमें किस शास्त्रकी प्रधानता स्वीकृत है। पुराण अठठारह हैं। ये १८ पुराण तीन भागोंमें विभक्त हैं—सात्त्विक पुराण, राजसिक पुराण और तामसिक पुराण। इनमें सात्त्विक पुराण ही सर्व-सम्मत रूपमें श्रेष्ठ हैं। अब यह ठीक हो गया कि सात्त्विक पुराण ही श्रेष्ठ हैं। अतएव सात्त्विक पुराण के अन्तर्गत नारदीय पुराणकी प्रामाणिकता अन्य राजसिक और तामसिकपुराणोंकी अपेक्षा स्वतः सिद्ध है। ऐसा होने पर नारदीय पुराणमें उल्लिखित 'अधिक मास' सम्बन्धी यह विचार कि अधिक मास "पुरुषोत्तम मास" है—प्रामाणिक और निर्भर योग्य ठहरता है। यही कारण है कि वैष्णवगण सात्त्विक पुराणोंके प्रमाणको ही श्रेष्ठ प्रमाण स्वीकार करते हैं तथा स्मार्तों द्वारा समर्थित राजसिक या तामसिक पुराणोंकी प्रामाणिकताको सात्त्विक पुराणोंके मुका-बलेमें स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं। तब यह बात ठीक है कि जहाँ राजसिक और तामसिक पुराणोंके वचन-समूह सात्त्विक पुराणोंका आनुगत्य करते हैं अर्थात् विरोध नहीं करते हैं, वहाँ राजसिक और तामसिक पुराणोंके वचनोंको भी माननेमें कोई बाधा नहीं है। इसका कारण यह है कि राजसिक और तामसिक स्वभाववाले मनुष्योंको सत्त्वगुणकी तरफ आकर्षण करनेके लिये उन पुराणोंमें (राजसिक और तामसिक पुराणोंमें) ऐसा लिखा गया है।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—इन तीनों गुणोंमें सात्त्विक गुण ही श्रेष्ठ है। श्रेष्ठत्व और निकृष्टका परिचय उसके फलसे ही मिलता है। जिस गुणका फल श्रेष्ठ होगा, वही गुण श्रेष्ठ होगा। इस विषयमें गीता शास्त्रने हमें सावधान कर दिया है।

जिन्होंने गीताके चौदहवें अध्यायका भलीभाँति अध्ययन किया है, उनको इस विषयमें कोई संदेह नहीं हो सकता है। सत्त्वगुण ही निर्मल ज्ञान और सुख प्रदान कर क्रमशः ऊँची गति प्रदान करता है। दूसरी तरफ रजस्तमोगुण जीवको निम्नगामी, दुःखमय और घोर अज्ञान रूप अन्धकारमें फेंक देते हैं। यहाँ गीताके दो-तीन श्लोक पाठकोंकी जानकारीके लिये उद्धृत किये जा रहे हैं—

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुख-संगेन बध्नाति ज्ञान-सङ्गेन चानघ॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णा-संग-समुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्॥
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखम् अज्ञानं तमसः फलम्॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुण-वृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः॥
(गीता १४।६,७,८,१६,१८)

गीताको समस्त सनातन धर्मावलम्बियोंने सर्वसम्मतिसे प्रमाण माना है। साक्षात् गोलोकपति श्रीकृष्णकी श्रीमुख-वाणी होनेके कारण वे इसे गीतोपनिषद् मानते हैं तथा इसका पूजन भी करते हैं। अतएव श्रीगीतोपनिषद्की उक्त वाणियोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सात्त्विक गुण ही श्रेष्ठ है और इसीके द्वारा विशुद्ध ज्ञान लाभकर उत्तम गति पायी जा सकती है। रजगुणकी वृद्धि होने पर जीव सकाम कर्मी हो पड़ता है, यह सकाम कर्म ही जीवके बन्धनका कारण है। उससे लोभ आदि नाना प्रकारकी कामनाएँ और सदसत् क्रियाओंमें प्रवृत्ति पैदा होती है। इस विषयमें भी गीताने हमें स्पष्ट सावधान किया है—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥
(गीता १४।१२)

गीताके प्रमाणके अनुसार कोई-कोई यह भी कह सकते हैं कि सात्त्विक गुण श्रेष्ठ है तथा सात्त्विक शास्त्रोंकी प्रामाणिकता भी हम स्वीकार करते हैं; परन्तु नारदीय पुराण सात्त्विक पुराण है इसका क्या प्रमाण है? इस विषयमें हम ब्रह्मवैवर्त्तपुराणका प्रमाण देकर संदेह दूर करते हैं। अठ्ठारह पुराणोंमें से कौन-कौन पुराण किस गुणकी श्रेणीमें हैं, यह स्थिर करते हुए ब्रह्मवैवर्त्तमें इस प्रकार कहा गया है—

वैष्णवं नारदीयञ्च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडञ्च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि मनीषिभिः॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोधत॥
मात्स्यं कौर्म्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयंच षडेतानि तामसानि निबोधत॥

अर्थात् अठ्ठारह पुराणोंमें से मनीषियोंने विष्णुपुराण, नारदीय पुराण, मङ्गलमय भागवत पुराण, गरुड़ पुराण, पद्मपुराण एवं बाराह पुराण—इन छः पुराणोंको सात्त्विक पुराण माना है। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्मपुराण—ये छः राजसपुराण हैं। एवं मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द और अग्नि—ये छः पुराण तामसिक कहे गये हैं।

यहाँ विशेष लक्ष्य करनेकी बात यह है कि ब्रह्मवैवर्त्त पुराण राजसिक पुराणके अन्तर्गत है और ब्रह्मवैवर्त्त पुराण अर्थात् राजसिक पुराणमें ही सात्त्विक पुराणोंकी सर्वश्रेष्ठताका उल्लेख है। यदि सात्त्विक पुराणोंकी श्रेष्ठताका यह उल्लेख किसी सात्त्विक पुराणमें होता, तो राजस या तामस व्यक्ति यह कहनेका अवसर पा सकते थे कि अपनी प्रशंसा तो सभी करते हैं; यदि सात्त्विक पुराणोंमें सात्त्विक पुराणोंकी सर्वोत्तमताका उल्लेख है तो इसमें प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती। परन्तु यहाँ तो राजसिक पुराणोंमें सात्त्विक पुराणोंकी सर्वश्रेष्ठताका उल्लेख रहनेके कारण अपनी प्रशंसा आप करनेका दोष यहाँ नहीं स्पर्श करता है।

अतएव अधिक मासको 'मलमास' के रूपमें ग्रहण न करके सात्त्विक पुराणोंके अनुसार हम इसे

'पुरुषोत्तम मास' के रूपमें इसकी सर्वश्रेष्ठता स्थापन करेंगे। यह सारे शुभ कर्मोंका आकार स्वरूप और स्वभावतः ही समस्त प्रकारकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

अधिकमासको मलमास कहना अयुक्ति-संगत है

यदि एक ही शास्त्रकर्त्ताके विभिन्न मत एक ही स्थानमें दिखलायी पड़ते हो, तो उनमेंसे कौनसा मत ग्रहण करने योग्य है—इस विषयमें और भी विचार करना आवश्यक है। शास्त्रमें परस्पर विरोधी विचार उपस्थित होने पर वहाँ एक मात्र युक्ति ही उनकी संगति स्थापन करती है—

"केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्या विनिर्णयः।
युक्तिहीन-विचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥"

इस प्रकार पूर्व पक्ष उठाने पर भी हम युक्तिके द्वारा भी स्थापन कर सकेंगे कि अधिकमासको मल-मास कहना उचित नहीं है। क्योंकि यह अधिक मास चान्द्र मासका अभाव पूरा करता है। केवल यही नहीं, यह सौर वर्षके साथ मिलन करनेवाला भी है। जो अभाव पूरा करते हैं उनको तुच्छ या हीन समझना अन्याय और दुर्नैतिकता है। कर्म जड़ स्मार्तजन मलके द्वारा अभाव पूरा करना चाहते हैं—इसे युक्तिवादी नैतिक सज्जन पुरुष कैसे मान सकते हैं? जो चन्द्र सूर्यके आलोकसे प्रदीप्त होकर आत्म-गरिमा व्यक्त करते हैं, उन चन्द्रकी गति ३२ महीनों-में ह्रासप्राप्त होनेपर उनमें सूर्यके साथ मिलनेकी आकांक्षा बड़ी ही प्रबल हो उठती है। यह अधिक-मास चान्द्र गतिको बढ़ाकर सूर्यके बराबर पंक्तिमें लाता है अर्थात् चान्द्र वर्षकी कमीको पूरा करके, उसको सौरवर्षके समानान्तर रेखामें उपस्थित कर दोनोंको मिलाता है। अतः यह दोनोंसे मिलन कराने वाला है। इसलिये मिलन करानेवाले इस अधिक-मासको सर्वोत्तम 'पुरुषोत्तम मास' न जान कर मल या मलिम्लुच माननेसे नैतिकगण उपहास करेंगे। मलिम्लुच शब्दका अर्थ चोर होता है। चोरोंका रात्रिकालमें आपसमें मिलना हास्यास्पद और घृण्य है। अतएव अधिक मासको मलिन मास या मल-मास कहना किसी प्रकार भी युक्ति-संगत नहीं है।

—[श्रीगौड़ीय पत्रिका से]

भजन बिनु, जम कैं हाथ बिकानौं

भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ।
बालापन खेलत ही खोयौ, तरुनाई गरबानौ॥
बहुत प्रपंच किये मायाके, तऊ न अधम! अघानौ।
जतन जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ॥
सुत बित बनिता प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ।
लोभ मोह तैं चेत्यौ नाहीं, सुपनैं ज्यौं डहकानौं॥
बिरध भये कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि धुनि पछितानौ।
सूरदास भगवंत भजन बिनु, जम कै हाथ बिकानौ॥

उपनिषद्-वाणी

श्वेताश्वतर—३

जो समस्त जीवों और हिरण्यगर्भसे श्रेष्ठ हैं, जो समस्त प्राणियोंकी हृदय-गुहामें छिपे हुए हैं, उन सर्वपरिवेष्टित सर्वव्यापक ब्रह्मको जान लेने पर जीव सदाके लिये जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा लेता है। उन अविद्यासे परे महान्‌से भी महान् आदित्य-वर्ण परमपुरुषको अर्थात् ज्योतिर्मय परम पुरुषको जान लेने पर मृत्युको जीता जा सकता है। इसके अतिरिक्त परमपद प्राप्तिका कोई दूसरा मार्ग नहीं है। उनसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। वे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म प्राणियोंके भीतर भी अन्तर्यामी रूपमें विराजित होनेके कारण उनसे अधिक कोई भी सूक्ष्म नहीं है। वे सभी व्यापक पदार्थोंसे भी महान् हैं। वे प्रलय-कालमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपने अन्दर लीन कर लेते हैं। वे वृक्षकी भाँति स्थिर परम प्रकाशमय अपने नित्यधाममें नित्य स्थित हैं। फिर भी उनके द्वारा सम्पूर्ण जगत पूर्ण है। वे सब तरहसे श्रेष्ठ हैं। सब प्रकारके प्राकृत आकारसे रहित हैं। उन सब प्रकारके विकारोंसे शून्य परमेश्वरको जान लेने पर जीव अमर हो जाता है। जो उनको नहीं जान लेता, वह बार-बार दुःख ही प्राप्त होता है।

उनका सब जगह मुख है, सब जगह सिर है और सब जगह गर्दन आदि हैं। वे समस्त प्राणियों-की हृदय-गुहामें निवास करते हैं। फिर भी वे सर्व-व्यापी होनेके कारण सर्वगत और मंगलमय हैं।

उनका एक नाम "महाप्रभु" है। वे सबका नियमन करते है, सबके हृदयमें विराजमान हैं और निर्मल हृदयमें प्रत्यक्ष साक्षात्कारके विषय होते हैं। जीवका हृदय अंगुष्ठमात्र परिमाणका बतलाया गया है। परमात्मा भी जीवोंके अन्तर्यामी या साक्षीके रूपमें उनके हृदयमें अंगुष्ठमात्ररूपमें विराजमान हैं। उनको जान लेने पर जीव अमृतका अधिकारी हो जाता है। इस विषयमें ब्रह्मसूत्र १।३ २४–५५ सूत्र आलोच्य हैं।

जो कुछ उत्पन्न हुआ है, जो कुछ भविष्यमें उत्पन्न होगा और वर्तमान समयमें जो कुछ अन्नद्वारा पुष्ट और वर्द्धित हो रहा है, वह सम्पूर्ण जगत् परमेश्वर-का स्वरूप है अर्थात् उनकी शक्तिसे उत्पन्न होनेके कारण उनसे अभिन्न कहा गया है। ये अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे सबकी सृष्टि करते हैं। वे मोक्षके स्वामी हैं अर्थात् जीवोंको संसार-बन्धनसे छुड़ानेमें समर्थ हैं। अतएव जीवमात्रका कर्त्तव्य है कि वे उन परमपिता परमेश्वरके शरणागत हों।

उन परमेश्वरके हाथ, पैर, सिर, मुख और कान सर्वत्र विराजमान हैं। वे अपनी शक्ति द्वारा सब जगह सब कार्य कर सकते हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वशक्ति-मान और सर्वत्र होनेके कारण यह सब कुछ सत्य है। वे प्राकृत इन्द्रियोंसे रहित (अप्राकृत चिन्मय इन्द्रिय युक्त) होने पर भी सब इन्द्रियोंके सब विषयों-को जानते हैं; वे सबके स्वामी, शासक और परम आश्रय हैं। चर-अचर समस्त प्राणियोंको उन्होंने अपने वशमें रखा है। वे नौ द्वार युक्त इस मनुष्य शरीरमें अन्तर्यामीके रूपमें विराजमान रहने पर भी लीलाके लिये बाहरी संसारमें प्रकट हुआ करते हैं। सर्वत्र ही उनका ध्यान सम्भव है।

वे बिना हाथ और पैरोंके हैं, फिर भी चलनेवाले और ग्रहण करनेवाले हैं अर्थात् प्राकृत इन्द्रियोंसे रहित होनेके कारण बद्धजीवोंकी सीमाबद्ध इन्द्रियोंकी पकड़से बाहर हैं, परन्तु भगवान् अपनी चिन्मय

इन्द्रियोंसे सर्वत्र चलते-फिरते हैं तथा सब कुछ ग्रहण करते हैं ? वे बिना नेत्रोंवाले तथा कानोंवाले होकर भी सब कुछ दर्शन और श्रवण करते हैं अर्थात् उनके अप्राकृत नेत्र और कान हैं। वे सब वेद्य-वस्तुओंके वेत्ता अर्थात् जाननेवाले हैं, परन्तु उनका वेत्ता कोई नहीं है। केवल उन्हींकी कृपासे उनको जाना जा सकता है। वे आदि पुरुष और महान् कहे गये हैं। वे क्षुद्रसे क्षुद्र अणु पदार्थोंमें भी अणुसे भी अणु बन कर जन्म ग्रहण करनेवाले जीवोंके भीतर विराजमान् हैं। उन्हींकी कृपासे उनका साक्षात्कार करने पर जीव शोकरहित हो सकता है तथा ईश्वरकी महिमाको भी जान सकता है।

वेदका रहस्य वर्णन करनेवाले पुरुष उन परमेश्वरके सम्बन्धमें ऐसा कहते हैं—वे परम पुरुष परमेश्वर जन्मरहित हैं, सर्वत्र विद्यमान हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं तथा सब प्रकारके विकारोंसे शून्य हैं। उनकी कृपासे ही उनको जाना जा सकता है।

वे अवर्ण होकर भी अपनी शक्तिके प्रभावसे अनेक वर्णोंके (रङ्गोंके) शरीर धारण करके प्रकाशित होते हैं और प्रलयके समय जगत्को अपने भीतर विलीन कर लेते हैं। वे अद्वितीय हैं; उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वे हमें शुभ बुद्धि प्रदान करें।

वे ही अग्नि हैं, सूर्य हैं और चन्द्र हैं। और तो क्या प्रकाशमय नक्षत्र, जल, प्रजापति और ब्रह्मा भी वे ही हैं। ये सभी उनकी विभूति-स्वरूप हैं। वे स्त्री हैं, पुरुष हैं; वे ही कुमार और कुमारी भी हैं; वे ही बुढ़ापेमें लाठीके बल पर चलनेवाले हैं। वे ही विराट रूपमें सर्वत्र विराजमान हैं।

वे नीले रंगके पतङ्ग हैं, हरे और लाल रंगके नेत्रोंवाले पक्षी हैं। वे बिजलीसे युक्त बादल, बसन्त ऋतु और सातों समुद्र हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हींसे उत्पन्न होनेके कारण उनसे अभिन्न है। वे विभु होनेके कारण सर्व-व्यापक और अनादि हैं। वे परा और अपरा दोनों शक्तियोंके स्वामी और सर्वरूप हैं। उनकी इन दोनोंमेंसे अपराशक्ति लोहित-शुक्ल-कृष्ण वर्णोंवाली है; अर्थात् रजः, सत्त्व और तमोगुणोंवाली है तथा जीवोंके प्राकृत शरीरोंका सृजन करने वाली है। सत्त्वगुण निर्मल होनेके कारण श्वेतवर्ण कहा गया है, रजोगुण रागात्मक होनेके कारण लोहित (लाल) वर्णका और तमोगुण अज्ञानस्वरूप और आच्छादक होनेके कारण कृष्ण (काले) वर्णका कहा गया है। उनकी परा प्रकृति अर्थात् जीवशक्ति दो प्रकारकी है। एक प्रकारके जीव मायासे मोहित होकर जड़ाशक्ति हेतु भोग परायण होकर मायामें स्थित हैं तथा मायाके अधीन हैं। दूसरे प्रकारके जीव (ज्ञानी महापुरुष) प्रकृतिका स्वरूप जान कर—उसे असार और क्षणभंगुर जान कर त्याग करते हैं। ये दोनों प्रकारके जीव अज और अनादि हैं।

दोनों अज जीवात्मा और परमात्मा एक ही वृक्षरूप शरीरमें सखाभावसे स्थित हैं। उनमेंसे एक अज अर्थात् जीव शरीरमें "मैं"की बुद्धि करनेके कारण अपने कर्मोंका फल सुख-दुःख भोग करता है और दूसरा अज (परमात्मा) सुख-दुःखका भोक्ता न बन कर केवल साक्षीके रूपमें रहता है। कठ और मुण्डक उपनिषदोंमें भी ऐसा वर्णन मिलता है। एक ही वृक्ष पर अवस्थित जीवात्मा परमात्माका स्वरूप न जाननेके कारण शरीरमें आसक्ति हेतु संसारका भोग कर शोक और मोहको प्राप्त होता है। परन्तु किसी समय परमेश्वरकी अहैतुकी दयासे उनका (परमेश्वरका) स्वरूप जान लेने पर सर्वथा शोक रहित हो सकता है।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज

संसारका सर्वप्रथम छात्र-आन्दोलन

आजकल संसारके सभी देशोंके सभी क्षेत्रोंमें आन्दोलनोंकी भरमार है। जिधर देखिये ही उधर कोई न कोई आन्दोलन छिड़ा हुआ है। विशेषकर छात्र-आन्दोलनकी तो बात ही मत पूछिये। हाल ही में वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तथा लखनऊ, कानपुर, आगरा आदि विश्वविद्यालयों, स्कूलों, पाठशालाओंमें जो छात्र-आन्दोलन हुए हैं, उससे हमारे राष्ट्रनायकों और देशके कर्त्तव्य परायण व्यक्तिओंका चिन्तित होना स्वाभाविक है। जहाँ तक इन आन्दोलनोंके औचित्य या अनौचित्यका एवं सदुपयोग या दुरुपयोगका प्रश्न है, उसके फलसे उसका परिचय मिलता है। आज अनुशासनहीनताका बोलबाला है, सज्जनोंका घरसे निकलना कठिन हो गया है, न्याय मँहगा पड़ता है, और की बात ही क्या, न्यायालयोंकी एक-एक ईंट घूस माँगती है। छोटी-छोटी बातोंपर भी कुछ लोगोंका दल बना कर आन्दोलन छेड़ देना आजकल एक फैशनसा हो गया है। हमारे राष्ट्रपति महोदय, उपराष्ट्रपति महोदय तथा श्रीप्रधान मन्त्री इस समस्याके हलके लिये बेचैन हैं।

हमारे राष्ट्रनायकगण जहाँ एक तरफ राष्ट्रके निर्माणके कार्योंमें जी-जानसे लगे हुए हैं वहाँ दूसरी तरफ उनका ध्यान राष्ट्र विध्वंसक इन हड़तालों, अनुशासनहीनताके कार्यों तथा आन्दोलनकी ओर भी कम नहीं है। परन्तु जिस उपायका अवलम्बन कर वे राष्ट्रका निर्माण करना चाहते हैं तथा इन आन्दोलनोंको बन्द कर देशमें शान्ति स्थापन करना चाहते हैं उससे तो दिन दूनी और रात चौगुनी और भी अधिक बुरी अवस्था होती जा रही है। सभी हैरान हैं। कोई उपाय नहीं सूझता है उनको। देशमें एक तरफ बाह्य और भौतिक उत्कर्षकी प्रगति हो रही है, दूसरी ओर आध्यात्मिक और नैतिक अवनति अपनी चरम सीमाको पहुँच रही है। एक ओर कृषि, उद्योग आदिकी बड़ी-बड़ी योजनाएँ चल रही हैं दूसरी ओर युद्ध, भय, आतङ्क, अशान्ति और अनीति आदिसे राष्ट्रका मुख मलीन हो रहा है।

अस्तु, जब हम गंभीर रूपसे विचार करते हैं तब पता चलता है कि इस समय हमारी सारी शक्ति और सारा ध्यान भौतिक समृद्धि रूप बाहरी निर्माणोंमें ही लग जानेसे आन्तरिक (आत्मिक) निर्माणकी सम्पूर्ण रूपसे उपेक्षा हो रही है। प्राचीन ठोस संस्कृति, धर्म और दार्शनिक विचारोंकी उपेक्षाके कारण ही आज हमारी यह दुर्गति हो रही है। संतोषकी बात यह है कि आज हमारे अधिकांश राष्ट्रनायक इस नग्न सत्यकी उपलब्धि करने लगे हैं। हाल हीमें हमारे माननीय उपराष्ट्रपति महोदय तथा और भी कुछ चोटीके नेता यह स्वीकार किये हैं कि धार्मिक शिक्षाके प्रति उपेक्षाकी वर्तमान नीति ही इस अनुशासनहीनता और विभिन्न प्रकारके आन्दोलनोंके लिये उत्तरदायी है। धार्मिक शिक्षा अथवा आत्मिक उत्थान ही एक सबल और टिकाऊ राष्ट्रकी आधार शिला है। धार्मिक पृष्ठ भूमिके बिना केवल बाहरी निर्माण और योजनाएँ प्राणरहित शरीरके समान हैं। अतः हमें सजग होनेकी आवश्यकता है।

जब हम भारतके प्राचीन इतिहासका सिंहावलोकन करते हैं तो तब हम देख पाते हैं कि जब कभी भी भारतमें ईश्वर विरोधी अथवा धर्म-विरोधी राष्ट्रका गठन हुआ, शीघ्र ही बड़े-बड़े आन्दोलन छिड़ गये और उस धर्मविरोधी राष्ट्रको एकदम खत्म करके उसके स्थान पर एक सुन्दर धार्मिक राष्ट्रकी स्थापना की गयी। इन कल्याणकारी आन्दोलनोंमें सदासे भारतीय छात्रोंका साहसपूर्ण और प्रशंसनीय सहयोग

रहा है। ऐसे-ऐसे सत् उद्देश्यपूर्ण छात्र-आन्दोलनके इतिहासके गगनमें बालक प्रह्लादका नाम सूर्यकी भाँति देदीप्यमान है। उसने अपने पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपुके ईश्वर-विरोधी अधार्मिक-शासनके विरुद्ध अपने साथी छात्रोंके साथ जो आवाज बुलन्द की थी उसने छात्र सभामें जो उद्गार प्रकट किये थे, भारतीय संस्कृतका वह प्राण है। यही छात्र आन्दोलन संसारमें प्रथम छात्र आन्दोलन था।

हिरण्यकशिपु कठोर तपस्या के प्रभावसे ब्रह्माकी सृष्टिके मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी आदि समस्त प्राणियोंके लिये अवध्य बन गया था। दिन या रातमें, घरके बाहर या भीतरमें, ऊपर या नीचे कहीं भी न मरनेका वर उसे प्राप्त था। अपने बाहुबलसे तीनों लोकोंको जीत कर वह तीनों लोकोंका एकच्छत्र सम्राट बन बैठा। वह भौतिक उन्नतिके द्वारा स्वर्ग और वैकुण्ठके ऐश्वर्यको पृथ्वी पर ला देना चाहता था। उसके शासन कालमें भौतिक विज्ञानकी ऐसी उन्नति हुई थी कि पवनदेव उसके घरमें झाड़ देते, वरुण देव जल भरते, समुद्र बिना माँगे ही उसके चरणोंमें राशि-राशि रत्न डाल देता, नाग और सर्प भयसे बहुमूल्य मणियाँ उसे अर्पण करते, पृथ्वी बिना जोते-बोये यों ही प्रचुर परिमाणमें नाना प्रकारके खाद्यान्न और औषधियाँ पैदा करती। इतना ही नहीं वह असुर बिना किसी विमान या रॉकेटकी सहायताके ही इच्छानुसार चन्द्र और शुक्र आदि ग्रहोंकी तो बात ही क्या, भूलोक, स्वर्गलोक और पाताल लोकके किसी भी स्थानमें मनकी गतिसे पहुँच सकता था। उसने गति और दूरी (Time and distance) पर भी अद्भुत विजय पा ली थी।

इस प्रकार भौतिक दृष्टिसे सब प्रकारसे समृद्ध होने पर भी न तो वह स्वयं सुखी या शान्तिसे था, और न उसके राज्यकी जनता ही सुखी थी। उसे तो देवताओं और देवताओंके परम देवता सर्वेश्वर हरिसे सर्वदा डर बना रहता था कि उसका राज्य कहीं छीन न लिया जाय। उसके राज्यकी कुछ जनता जो ईश्वर और धर्ममें विश्वास नहीं रखती थी तथा भौतिक सुखोंकी प्राप्तिको ही मानव जीवनकी चरम सफलता मानती थी—हर प्रकारसे उसके साथ थी। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे, जो हिरण्यकशिपुके विचारोंसे बिलकुल ही सहमत न थे। परन्तु ये मुट्ठी भर लोग किसी प्रकार भी सम्राटके विचारोंके विरुद्ध सिर उठानेमें समर्थ न थे। इनका विचार था कि "केवल बाह्य भौतिक उन्नति द्वारा जीव यथार्थ सुखी नहीं हो सकता। परमार्थ शून्य केवल भौतिक उन्नतिका अन्तिम परिणाम अनिवार्य ध्वंस है। जो लोग इस पाँचभौतिक शरीरमें 'मैं की बुद्धि' और पुत्र-परिवार तथा धन-सम्पत्ति आदिमें 'मेरा'की बुद्धि रख कर केवल बाहरी शरीरको ही अधिकाधिक मात्रामें सुख पहुँचानेके साधनोंकी खोजमें ही दुर्लभ मनुष्य जीवनको लगा देते हैं, वे कदापि सुखी नहीं हो सकते। क्योंकि इस पाँचभौतिक शरीरके साथ इस जगतके सारे पदार्थ नश्वर और दुःखप्रद हैं। इसलिये बुद्धिमान मनुष्य जीवन-निर्वाहके लिये आवश्यक भौतिक-उन्नति पर सीमित ध्यान रख कर भगवत्प्राप्ति रूप नित्यसुख और नित्यशान्तिके पथपर ही अग्रसर होगा। जीवन और मरणके चक्करसे छूट कर जीव सच्चिदानन्द भगवानको कैसे पा सकता है—यही इस जगतकी मूल समस्या है। इस समस्याका जब तक हल नहीं हो जाता, तब तक उक्त मूल समस्याकी अनुगामिनी अनन्त समस्याएँ कदापि दूर नहीं हो सकतीं और नहीं हो सकतीं। बड़े आश्चर्यकी बात है कि सम्राट और उनके अनुयायी लोग प्रतिदिन लाखों-करोड़ों लोगोंको मरते और जन्मते देख कर भी केवल आहार, निद्रा, भय और मैथुन रूप पशुधर्मको ही अधिकाधिक समृद्ध करनेमें लगे हुए हैं तथा यथार्थ आत्मकल्याणमें लगे हुए सज्जन पुरुषोंको भौतिक उन्नतिकी परिकल्पनाओंके प्रति उदासीन किसी विपरीत जगत्में विचरण करते देख कर उन्हें आलसी और राष्ट्रके लिये भार-स्वरूप मानते हैं। उन पर अत्याचार करते हैं।"—ऐसा

सोच विचार कर भी हिरण्यकशिपु जैसे शक्तिशाली सम्राटके विरुद्ध वे थोड़ेसे इने-गिने व्यक्ति कर ही क्या सकते थे। वे किसी सुयोग्य नेता और सुअवसरकी खोजमें थे।

इधर हिरण्यकशिपु ऐसे सुयोगकी ताकमें था जब कि वह सृष्टि, स्थिति और प्रलयके मूल श्रीहरिको किसी प्रकार मार कर उनके सिंहासन पर भी अधिकार जमा सके। इसलिये उसने एक योजना बनायी। उसने अपने कुशाग्र बुद्धिवाले मन्त्रियों और सेनापतियोंको बुलाकर कहा—'वीरो! हमने जनताके सुखके लिये उनका जीवन-स्तर ऊँचा करनेके लिये बहुत कुछ किया है। खाद्य समस्या, उपयुक्त निवासकी व्यवस्था, गति और दूरीकी विजयकी समस्या आदि सभी समस्याएँ सफलतापूर्वक सुलझायी जा चुकी हैं। अब हमारे सामने दो ही प्रमुख समस्याएँ हैं। परन्तु ये दो समस्याएँ बड़ी ही जटिल हैं। हम सबको इन दोनोंको भी हल करनेमें जी जानसे जुट जाना पड़ेगा। यह काम कठिन तो है, परन्तु असंभव नहीं है। उनमेंसे पहली समस्या यह है कि हमारे राष्ट्रके अन्दर साधु-संत और ब्राह्मण कहलाने वाले राष्ट्रके भारस्वरूप कुछ बेकार लोग हैं। ये लोग खेती-बारी, मजदूरी, उद्योग-धंधे या किसी भी निर्माण कार्यमें नहीं लगते। ये लोग चूहों, बन्दरों, मच्छरों, आवारे पशुओंकी भाँति राष्ट्रके प्रधान शत्रु हैं। हमें अपने राष्ट्रसे साधु-संतरूपी बेकार समस्याका उन्मूलन करना ही होगा।'

हम सभी लोग इसका अनुभव कर रहे हैं, महाराज! दूसरी समस्या क्या है? सेनापति बीच ही में बोल उठे।

'दूसरी समस्या राष्ट्रकी विरोधियोंसे रक्षा की है'—हिरण्यकशिपुने अपना भाषण जारी रखा।' हमने स्वर्ग पर आधिपत्य तो कर लिया है। परन्तु देवता लोगोंने अभी तक आत्म समर्पण नहीं किया है। साथ ही अमृत पान कर अमर होनेके कारण वे सहज ही मारे भी नहीं जा सकते हैं। उनका नेता विष्णु बड़ा भारी छली-बली और कपटी है। ये लोग जब कभी भी संगठित होकर विद्रोह कर सकते हैं तथा राष्ट्रकी सत्ताके लिये खतरा हो सकते हैं। अतएव हमें सबसे पहले विष्णुको जासे मार डालनेका प्रयत्न करना होगा। फिर तो विष्णुके मारे जाने पर देवता और साधु-संत-ब्राह्मण आदि अपने-आप मर जायेंगे। (तालियोंकी गड़गड़ाहट)

'बड़ी सुन्दर युक्ति है राजन्! उपस्थित मंत्री और सेनापति सभी एक स्वरसे बोल उठे।

महाराजने भाषण जारी रखा—'परन्तु अब प्रश्न यह है कि विष्णुको मारा जाय तो कैसे? मेरा तो यह सुझाव है कि यज्ञपति विष्णु यज्ञके सहारे ही जीवित हैं। ऐसी दशामें यज्ञ करानेवाले साधु-संतों और ब्राह्मणोंको, घृत-उत्पत्तिस्थल गायोंको मार डालने तथा समिधा (यज्ञकी लकड़ी) के उत्पत्तिस्थान हरे-भरे फलयुक्त पेड़ोंको जड़से काट देनेसे यज्ञ क्रिया अपने-आप बन्द हो जायगी। यज्ञके बन्द होनेपर विष्णु आहारके अभावके मारा जायगा। फिर तो जैसे पेड़की जड़ काट डालनेसे डालियाँ आप सूख जाती हैं, वैसे ही विष्णुके मर जाने पर हमारे प्रधान शत्रु देवता लोग अपने आप मर जायेंगे। तब हम पूर्ण निर्भय हो सकेंगे।'

'वाह! वाह!!' सबने सम्राटके विचारोंकी सराहना की। और सभा भङ्ग होनेपर सभी सम्राट्की आज्ञाके पालनमें तत्पर हो गये।

बाहरी शत्रुओंसे तो किसी प्रकार रक्षा की जा सकती है, परन्तु जब घरमें अपने पुत्र ही विरोधी हो जाय और पिताके शत्रुका गुणगान करने लग जाय, किया जाय? हिरण्यकशिपुके सबसे कनिष्ठ पुत्रका नाम प्रह्लाद था। पूर्व जन्मके शुभ संस्कार तथा माताकी गर्भावस्थामें ही देवर्षि नारदकी शिक्षाके प्रभावसे वह बचपनसे ही निर्भय और परम उच्चकोटिका भक्त निकला। पिताके अनात्म और स्थूल विचार उसे अच्छे नहीं लगते थे। पितासे यह बात अधिक दिनों

तक छिपी नहीं रही। उन्होंने प्रह्लादको एक विशेष स्कूल (गुरुकुल) में भर्ती करवा दिया।

एक दिन असुरराज हिरण्यकशिपुने प्रह्लादकी रुचिकी परीक्षाके लिये गोदीमें रखकर बड़े प्यारसे पूछा—बेटा ! तुमने अबतक क्या सीखा है ?

प्रह्लादने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया—"पिताजी ! इस अनित्य संसारमें दुर्लभ किन्तु क्षणभंगुर मनुष्य जन्म—जिसमें परमार्थका साधन हो सकता है, पाकर नवधा भक्तिका आचरण कर नित्य-भगवत्सेवाकी प्राप्तिको ही मैंने मानव जीवनका सर्वश्रेष्ठ एवं परम कर्त्तव्य समझा है। इसके बिना मनुष्य पशु है। हम सबको भगवान विष्णुकी नवधा भक्तिका आचरण करना अवश्य कर्त्तव्य है।"

प्रह्लादकी बात सुनकर दैत्यराजकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने प्रह्लादको दूर जमीन पर फेंक दिया और बड़े जोरसे कड़क कर अपने योद्धाओंको ललकार कर कहा—इस कुलाङ्गारको अभी अभी मार डालो। यह छोटा होने पर भी न जाने किसके बलपर मेरी अवज्ञा कर रहा है ? न जाने किस दुष्टने इसे ऐसी शिक्षा दी है ? देखें इसकी कौन रक्षा करता है ?

दैत्यराजकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेका साहस किसमें था ? उन्होंने आज्ञा पाते ही बालक प्रह्लाद पर घातक अस्त्रोंसे आक्रमण किया; परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि उस आक्रमणसे प्रह्लादको तनिक भी चोट न पहुँची। फिर उन्होंने प्रह्लादको पहाड़ोंसे गिराया, समुद्रमें फेंका, जलते हुए प्रचण्ड अग्नि-कुण्डमें फेंका, विष दिया इत्यादि सब कुछ किया। परन्तु प्रह्लादका वे कुछ भी बिगाड़ नहीं सके। परम करुणामय भक्तरक्षक भगवान श्रीहरि ही जब प्रह्लादकी रक्षा कर रहे हों, तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मिलकर भी उनका क्या बिगाड़ सकता था ? यह देखकर दैत्यराजकी बुद्धि चकरा गयी। फिर अपने निजी सचिव (private secretary) के परामर्शसे उसने प्रह्लादको पुनः गुरुकुलमें नजरबन्द कर रख दिया। वहाँ अस्त्रधारी संतरियोंका सख्त पहरा बैठा दिया गया, जिससे श्रीहरिका कोई दूत अर्थात् साधु-संत या ब्राह्मण अथवा स्वयं विष्णु भी प्रह्लादसे छिपकर न मिल सकें। साथ ही दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी अनुपस्थितिमें उनके दो पुत्र षण्ड और अमर्कके ऊपर प्रह्लादकी बुद्धि ठीक करनेका भार सौंप दिया गया।

दोनों गुरु पुत्र प्रह्लादको समझाते-समझाते हार गये, परन्तु किसी प्रकार भी प्रह्लादकी बुद्धि बदल नहीं सके। एक दिन अपने शिक्षा गुरुओंकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर प्रह्लाद गुरुकुलके समस्त छात्रोंको अपने निकट बुलाकर बड़े ही आवेशमें भरकर ओजस्वी वाणीसे कहने लगे—

"प्यारे मित्रों ! इस संसारमें मनुष्य-जन्म बड़ा ही दुर्लभ है। इसके द्वारा अविनाशी सच्चिदानन्द भगवानकी प्राप्ति हो सकती है। परन्तु पता नहीं कब इसका अन्त हो जाय; इसलिये बुद्धिमान पुरुषको बुढ़ापे या जवानीके भरोसे न रह कर बचपनमें ही भगवत् प्राप्ति करानेवाले साधनोंका अनुष्ठान कर लेना चाहिए। इस मनुष्य-जन्ममें श्रीभगवानके चरणोंकी शरण लेना ही जीवनकी एकमात्र सफलता है। क्योंकि भगवान समस्त प्राणियोंके स्वामी, सुहृद, प्रियतम और आत्मा हैं। भाइयों। इन्द्रियोंसे जो सुख भोगा जाता है, वह तो जीव चाहे जिस योनिमें रहे—प्रारब्धके अनुसार सर्वत्र वैसे ही मिलता है, जैसे बिना किसी चेष्टा किये निवारण करने पर भी दुःख मिलता है। क्योंकि स्वयं मिलने वाली वस्तुके लिये परिश्रम करना आयु और शक्तिको व्यर्थ गँवाना है। जो अज्ञानी व्यक्ति इनमें ही उलझ जाते हैं अर्थात् सांसारिक तुच्छ भोग-सुखको समृद्धि में ही मानव जीवनकी इति कर्त्तव्यता समझते हैं, उन्हें सुख और शान्ति नहीं प्राप्त होती। क्योंकि सुख और शान्ति तो एकमात्र भगवानके चरणोंमें ही निवास करती हैं। जब भगवत् प्राप्ति ही नहीं हुई, तो सुख-शान्ति कहाँसे मिले? मनुष्यको अपनी मृत्युके पहले ही अपने कल्याणके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिए।

भाइयों ! मान लो मनुष्यकी पूरी आयु सौ वर्ष की है। अब देखिए, इनकी आयुका आधा भाग ५० वर्ष सोते-सोते निकल जाता है। बचपन हिताहित-शून्य अज्ञानता तथा कुमारावस्था खेलकूद आदिमें बितती है। इस प्रकार बीस वर्षका तो पता ही नहीं चलता। बुढ़ापेमें ८० से १०० वर्षकी आयुमें अर्थात बीस वर्षोंमें कुछ करने-धरनेकी शक्ति नहीं रह जाती। इस प्रकार २०+५०+२०=९० वर्षकी आयु यों ही चली गयी। रह गयी बीचकी थोड़ी सी आयु। उसमें कभी न पूरी होनेवाली बड़ी-बड़ी कामनाएँ हैं, बलात् पकड़ लेनेवाला मोह है और घर-द्वारकी वह आसक्ति है जिसमें जीव इतना उलझ जाता है कि उसे कुछ कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका ज्ञान ही नहीं रहता है। इस तरह वह बची-खुची आयु भी हाथसे निकल जाती है।

प्रिय साथियों ! कोई भी अजितेन्द्रिय व्यक्ति एक बार घर-गृहस्थीमें फँसने पर उससे अपने आपको छुड़ानेका साहस नहीं कर सकता। जो अपनी प्रिय-तमा पत्नीके एकान्त सहवास और उसकी प्रेमभरी बातों पर अपनेको निछावर कर चुका है, जो भाई-बन्धु और मित्रोंके स्नेह-पाशमें बँध चुका है, जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रियके सुखोंको ही सर्वस्व मान बैठा है, जिसकी भोगवासनाएँ कभी भी तृप्त नहीं होतीं; वह उसीके पालन-पोषणके लिये अपनी आयु गवाँ देता है। इसलिये भाइयों,तुमलोग विषयासक्त दैत्योंका सङ्ग दूरसे ही छोड़ दो और आदि देव भगवान नारायण-की शरण ग्रहण करो।'

प्रह्लादजीके भाषणका उन दैत्य बालकोंपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा। उसी समयसे उनका मन विषयोंसे हट कर भगवानके चरणकमलोंकी ओर आकर्षित हो पड़ा। जब गुरुजी लौटे तब उन्हें स्थिति कुछ दूसरी ही नजर आयी, उनकी शिक्षा पर कोई एक भी बालक ध्यान नहीं दिया। वे भागे-भागे हिरण्यकशिपुके पास आये और छात्र-आन्दोलन तथा उसके नेता बालक प्रह्लादके विषयमें निवेदन किये।

छात्र-आन्दोलनकी बात सुनकर हिरण्यकशिपुके क्रोधका ठिकाना न रहा। उसने बालक प्रह्लादको बुलाकर बड़े जोरोंसे गरज कर कठोर वाणीसे कहा—मूर्ख ! तू बड़ा उद्दण्ड हो गया है। अब तू अपने साथ हमारे कुलके और बालकोंको भी नष्ट करना चाहता है। तूने किसके बल पर मेरी आज्ञाके विरुद्ध कार्य किया है ? बोल तो सही।'

प्रह्लादजीने निर्भीक होकर कहा—दैत्यराज ! ब्रह्मासे लेकर तिनके तक छोटे-बड़े चर-अचर जीवोंको भगवानने ही अपने वशमें कर रखा है। वे केवल मेरे और आपके ही नहीं, बल्कि संसारके समस्त बल-वानोंके भी बल हैं। आप भी अपना यह असुर भाव छोड़ कर उनका ही भजन कीजिये। क्रोध पापका मूल है। आप स्थिर होकर विचार करें।'

प्रह्लादकी बात सुन कर हिरण्यकशिपुने और भी बिगड़कर कहा—रे दुष्ट ! तेरी दुष्टताकी तो अब हद हो गयी। तूने मेरे सिवा जो और किसीको जगतका स्वामी बतलाया है, सो देखूँ तो तेरा वह जगदीश्वर कहाँ है। वह तो सर्वत्र है न ? तो इस खंभेमें क्यों नहीं दीखता ? मैं अभी अभी तेरा सिर काट रहा हूँ, देखें, तेरा वह सर्वस्व हरि तेरी कैसे रक्षा करता है ? ऐसा कह कर वह 'हाथमें खड्ग लेकर सिंहासनसे कूद पड़ा तथा उस खंभेको एक घूँसा मारा। घूँसाका मारना था कि एक भयङ्कर शब्दके साथ भगवान् नृसिंहदेव उस खंभेमे आविर्भूत होकर खेल ही में हिरण्यकशिपुको पकड़ लिये और ठीक संध्याके समय, न बाहर न भीतर देहलीके ऊपर, अपने जंघोंके ऊपर रख कर अपने तीक्ष्ण नखोंसे उस दैत्यके पेटको फाड़ डाला। साथ-ही-उसकी सहायताके लिये प्रस्तुत हजारों दानवोंको भी खदेड़ खदेड़ कर मार डाला।

इस प्रकार साधु-संत और भगवत्-विरोधी शासनका अंत हुआ। भगवान नृसिंहदेव प्रह्लादको

(शेष पृष्ठ २६० पर)

श्रीरसराज ब्रजवासीका परलोकगमन

हम अतिशय दुःखके साथ पाठक-पाठिकाओंको यह संवाद दे रहे हैं कि पिछले २५ अप्रैल १९६१, मङ्गलवारको दिनके ३ बजे श्रीभागवत पत्रिकाके प्रकाशक एवं कार्याध्यक्ष श्रीपाद रसराज ब्रजवासी 'न्याय-कोविद' जी हमलोगोंको सदाके लिये अपने विरह-सागरमें निमज्जित कर स्वधामको पधार गये।

ब्रजवासीजी कुछ महीनोंसे पुण्यतोया भगवती भागीरथीके पश्चिम तट पर सोलह कोस श्रीनवद्वीप-धामके अन्तर्गत श्रीकोलद्वीप-धाममें (वर्तमान नवद्वीप शहरमें) स्थित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें रहकर भगवद्भजन कर रहे थे तथा श्रीमठके आवश्यक-सेवा कार्यमें नियुक्त थे। वे कुछ दिनोंसे रक्तचापरा अनुभव कर रहे थे। इधर वे आशानुरूप आरोग्य लाभ भी कर रहे थे कि अकस्मात् उपरोक्त दिवस सबको त्यागकर सदाके लिये स्वधाममें चले गये।

ब्रजवासीजीका पूर्वाश्रम बिहार प्रान्तके पुरुलिया शहरमें था जो आजकल पश्चिम बङ्गालमें मिला दिया गया है। पचास वर्षकी आयु तक सांसारिक दृष्टिसे एक सफल गृहस्थका जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् सांसारिक भोग-सुखकी अनित्यता तथा अकर्मण्यता उपलब्ध कर उनके हृदयमें संसारके प्रति यथार्थ वैराग्य और भगवद्भजनकी तीव्र लालसा पैदा हुई। ऐसी दशामें यह सोच कर कि गृहस्थपुरुष-मात्रको पचास वर्षकी आयु पूर्ण होने पर वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर भगवद्भजनमें लग जाना उचित है—वे घर-बार-स्त्री-पुत्र सबकी ममता त्याग कर सद्गुरुकी खोजमें निकल पड़े। वाराणसी, प्रयाग, हरि-द्वार, ऋषिकेश, वृन्दावन और मथुरा आदि विभिन्न स्थानोंमें लगभग दो-तीन वर्षों तक भ्रमण करनेके पश्चात् सन् १९५५ ई० के प्रारम्भमें वे सौभाग्यवश श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्री-आचार्य देवके दर्शनोंके लिये उपस्थित हुए। श्रीश्रीआचार्य देवके दर्शनों एवं मधुर उपदेशों-का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने उसी समय उनके श्री-चरण कमलोंमें आत्म समर्पण कर दिया और कुछ ही दिनोंमें उसी वर्ष श्रीश्रीआचार्य देवके निकट श्रीहरिनाम और पंच-रात्रिकी दीक्षा ग्रहण कर निष्ठा-पूर्वक श्रीगुरुदेवकी सेवा करते हुए हरिभजन करने लगे। उसी वर्ष श्रीगुरुदेवने उन्हें नव-प्रकाशिता श्रीभागवत पत्रिकाके प्रकाशक एवं कार्याध्यक्षके पद पर भी नियुक्त कर दिया। तबसे उन्होंने बड़ी तत्परतासे श्रीभागवत पत्रिकाकी सेवा की है।

श्रीपाद रसराज प्रभु अपने नामके अनुरूप ही बड़े रसिक स्वभावके थे। वे अपनी रसिकता और हास्यरससे पूर्ण वाणी-विनोदोंसे भक्तमण्डलीका सर्वदा विनोद किया करते थे। यहाँ तक कि रोते हुए लोगों-को भी हँसा दिया करते थे। इस प्रकार अपने स्वभावसुलभ सरलता, वैष्णवता और वाणी-विनोदके कारण क्या मठवासी संन्यासी-ब्रह्मचारी, क्या गृहस्थ भक्त सबके समान प्रिय थे। उनके स्वधाम गमनसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने अपने हारका एक चमकता हुआ मूल्यवान हीरा खो दिया है। उनके विच्छेदसे श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके सभी लोग विशेषतः उनके गुणोंसे मुग्ध हम नगण्य गुरुभ्रातागण उनका अभाव विशेष रूपमें अनुभव कर रहे हैं। हमलोग भी निष्कपट होकर, श्रीगुरुदेव और वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त रह कर जीवन-की शेष घड़ियों तक श्रीहरिभजनमें तत्पर रहें—उनके चरणोंमें हमारी यही कातर प्रार्थना है।

—जनैक विरही

श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ

ग्राम—चड़ाईखोला, पो० विछन्दै, जिला— ग्वालपाड़ा (आसाम)

आसाम प्रदेशके भक्तोंके विशेष अनुरोधसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक और नियामक श्रीआचार्यदेव पिछले ३० मार्च,१९६१ को श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी, चिद्घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीवंशीवदनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी और श्रीअद्वैतदास ब्रजवासीके साथ श्रीगोलोक गंज गौड़ीय मठ, आसाममें पधारे। वहाँ कुछ रोज तक हरिकथा प्रचार करनेके पश्चात् धुबड़ी और आसपासके स्थानोंमें पधार कर उन्होंने उन स्थानोंमें आयोजित बड़ी-बड़ी सभाओंमें भाषणोंके माध्यमसे श्रीचैतन्यदेव-प्रचारित प्रेम-भक्तिका सन्देश देकर वहाँकी जनतामें एक नयी चेतनता जाग्रत कर दी है।

पिछले २८ अप्रैलको चड़ाइखोला निवासी परम भागवत श्रीनरोत्तम दासाधिकारी महोदयके विशेष आह्वान पर श्रीश्री आचार्यदेव भक्त-मण्डलीके साथ उपरोक्त ग्राममें पधारे और वहाँके स्थानीय लोगोंके विशेषकर श्रीयुत् नरोत्तम दासाधिकारीके उत्साह एवं आग्रहसे कृपापूर्वक वहाँ पर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचार केन्द्रके रूपमें श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठकी प्रतिष्ठा बड़े धूम-धामसे की है।

परम भागवत श्रीपाद नरोत्तम दासाधिकारी महोदयने समितिको श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठके लिये भूमि तथा नित्य-सेवाकी व्यवस्थाके लिये आनकूल्य दान कर समितिके प्रतिष्ठाता एवं नियामक श्रीआचार्यदेवके प्रचुर आशीर्वादभाजन हुए हैं। इनकी यह शुभ सेवा-प्रचेष्टा सबकी सेवा-प्रवृत्तिको उद्दीप्त करे—श्रीश्रीगुरु गौराङ्गके चरणकमलोंमें हमारी यही प्रार्थना है।

आसाम प्रदेशके प्रचार और मठ-स्थापना आदिके कार्योंमें श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठके मठ-रक्षक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त सज्जन महाराजका उत्साह एवं उनकी सेवा-प्रचेष्टा सराहनीय है। मठ-प्रतिष्ठाके पश्चात् श्रीश्रीआचार्यदेव गत ३ मईको विमान द्वारा चूचूड़ा पधारे हैं।

(पृष्ठ २५८का शेष)

वरदान और राजका भार देकर अन्तर्द्धान हो गये। ब्रह्माजीने मुनियों और शुक्राचार्य आदिके साथ छात्र-आन्दोलनके वीर अग्रणी प्रह्लादको समस्त दानवों और दैत्योंका अधिपति बना दिया। "प्रह्लाद महाराजकी जय" "नृसिंह देवकी जय" के जय घोषोंसे आकाशमण्डल गूँज उठा। क्यों न हो, आज संसारका सर्वप्रथम आन्दोलन जो सफल हुआ था।

प्रह्लाद महाराजको भगवानके प्रति अचला भक्ति कैसे प्राप्त हुई ?

भगवद्भक्त प्रह्लादजीने श्रीनृसिंहदेवसे हाथ जोड़कर पूछा—प्रभो ! आपके प्रति मेरी इस प्रकार अचला भक्ति कैसे हुई ?—मुझे यह जाननेकी बड़ी उत्कंठा हो रही है।

प्रह्लादका प्रश्न सुनकर श्रीनृसिंहदेव बड़े प्रसन्न हुए और बोले—प्रह्लाद ! तुम पूर्व-जन्ममें ब्राह्मण थे। तुम्हारे पिताका नाम वसु शर्मा और माताका सुशीला था। तुमलोग अवन्तीनगरमें निवास करते थे। वसुशर्मा वेदज्ञ और सदाचारसम्पन्न धार्मिक ब्राह्मण पण्डित थे। वे प्रतिदिन वेदोंका विधिवत पाठ करते और होम-अनुष्ठान करते। उन्होंने अग्निष्टोम आदि अनेकों यज्ञ किये थे। वसुशर्माकी तरह उनकी सहधर्मिणी सुशीला देवी भी परम धार्मिक, सदाचार-सम्पन्ना और पतिपरायणा थी। धीरे-धीरे इनके गर्भसे पाँच पुत्र पैदा हुए। ब्राह्मण और ब्राह्मणी बड़े आनन्दसे इनका भरण-पोषण करने लगे। बड़े होने पर उनमेंसे चार पुत्र तो बड़े विद्वान्, सदाचार-सम्पन्न और भक्त हुए; परन्तु सबसे छोटे तुमने तनिक भी पढ़ना-लिखना नहीं सीखा। धीरे-धीरे कुसंगमें तुम्हारी बुद्धि बिगड़ती गयी और कुछ ही दिनोंमें वेश्यासक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे। तुम अधिकांश समय बुरे कर्मोंमें लिप्त रहते और वेश्याके घरमें ही पड़े रहते।

एक दिन किसी बातको लेकर उस वेश्याके साथ तुम्हारा घोर कलह हो गया। इसलिये उस दिन मानसिक दुःखके कारण तुमने कुछ भी नहीं खाया। सौभाग्यवश उस दिन मेरा व्रत (श्रीनृसिंहचतुर्दशी-व्रत) था। उस दिन उपवास रहनेके कारण तुम्हारा अनजानमें ही व्रतका पालन करना हो गया। इधर मनकी आशान्ति और उद्वेगसे रातभर नींद भी नहीं आयी; अतः रात्रि जागरण भी हो गया। वह वेश्या भी तुम्हारे साथ कलह होनेके कारण दिन भर बिना खाये-पिये बैठी रही। राममें उसे भी निद्रा नहीं हुई। इस प्रकार पूर्व जन्ममें तुम दोनोंने अनजानमें भी बहुपुण्यप्रद मेरे व्रतका अनुष्ठान किया था। इस व्रत का पालन करनेके कारण ही मेरे प्रति तुम्हारी अचला भक्ति हुई है तथा तुम मेरे इतने प्रिय हुए हो। इसी व्रतका पालन कर देवता आज स्वर्गमें सुख भोग रहे हैं। ब्रह्मा भी मेरे इसी व्रतका अनुष्ठान करके उसीके फलस्वरूप विश्वके सृष्टिकर्त्ता बने हैं। शिव ने भी त्रिपुरासुरका बध करनेके लिये इस व्रतका पालन किया था और उसीके प्रभावसे वे उस असुर-का बध करनेमें समर्थ हुए थे। अनेकों देवता, प्राचीन ऋषिगण, और भाग्यशाली नृपतियोंने इस व्रतका अनुष्ठानकर सिद्धि पायी है। वह वेश्या भी इसी व्रतकी कृपासे त्रिभुवनोंमें पाये जाने वाले समस्त सुखोंको भोगनेवाली और मेरी प्रियपात्री बनी। असती नारियाँ भी इस जगत-प्रसिद्ध व्रतका पालन कर स्वर्गको प्राप्तकर सकती हैं। वह वेश्या स्वर्गमें अप्सराके रूपमें नानाप्रकारके सुखोंको भोग कर अन्तमें मुझे प्राप्त हुई है।

प्रह्लाद ! इस व्रतकी कृपासे पुत्रहीनको पुत्रकी प्राप्ति होती है। दरिद्र धन, पाता है, तेज चाहनेवाला तेज, राज्य चाहनेवाला राज्य तथा आयु चाहनेवाला दीर्घायुको प्राप्त होता है। यह व्रत नारियोंके लिये परम कल्याणदायक, पुत्रप्रद, धन-धान्यप्रद, स्वामी-हितकर और सौभाग्यप्रद होता है। इस व्रतका विधि पूर्वक पालन करनेसे वैधव्य-यंत्रणा और पुत्र-शोक सहना नहीं पड़ता। इसके द्वारा नर-नारी सभी प्रचुर परि-माणमें सुख, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और स्वर्गादि सुख

प्राप्त होते हैं। अधिक क्या कहूँ इस व्रतका अनुष्ठान-कारी पुनः संसारमें लौटकर नहीं आता अर्थात् जीवन-मरणके चक्करसे सदाके लिये छुटकारा पा लेता है। ब्रह्मा जीवन भर तक अपने चारों मुखोंसे इस व्रतका महात्म्य वर्णन करके भी शेष नहीं कर पाते। शिव अपने पाँचों मुखोंसे इसकी महिमा कह कर भी कभी भी इसका अन्त नहीं पाते। और तो क्या, स्वयं मैं भी इसकी महिमाका पूर्ण वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ। इसका अनुष्ठान करनेसे महापापी व्यक्ति भी पवित्र हो जाते हैं। जो लोग संसाररूपी भयङ्कर दावाग्निसे भयभीत हैं, वे प्रति वर्ष इस परम गोपनीय व्रतका पालन करेंगे। इस व्रतका माहात्म्य जान कर भी जो लोग इसका उल्लङ्घन करते हैं, वे महापापके भागी होते हैं तथा बहुत दिनों तक नरक भोग करते हैं।

प्रह्लाद! मेरी बातोंको झूठी न समझना। केवल-मात्र इस चतुर्दशीका व्रत करके सौभाग्यशाली मनुष्य हजारों एकादशी-व्रत पालन करनेका फल पा लेते हैं। अतएव वैशाख माहकी शुक्ल चतुर्दशीके दिन सबका इस सर्वपापहर व्रतका अनुष्ठान करना उचित है। यदि कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस व्रतका माहात्म्य सुने तो वह ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। इस गोपनीय व्रतका माहात्म्य वर्णन करनेसे समस्त प्रकारकी मनोकामनाएँ पूरी हो सकती हैं। इस व्रतका पालन कर दूसरे दिन कृपणता छोड़कर भगवान और ब्रह्मण-वैष्णवोंकी सेवा करनी चाहिए। श्रीनृसिंह देवके श्रीमुखसे अपने पूर्व-जन्मका वृतान्त और श्रीनृसिंह-चतुर्दशीव्रतका अतिशय अद्भुत माहात्म्य श्रवण कर प्रह्लाद बड़े विस्मित और परमानन्दित हुए।

(वृहन्नारसिंह पुराणसे)

श्रीगौड़ीय-व्रतोपवास

ज्येष्ठ

१२ पुरुषोत्तम, १२ ज्येष्ठ, २६ मई, शुक्रवार—एकादशी व्रत

१३ ,, ,, १३ ,, ,, २७ ,, शनिवार—सवेरे ६-२० के पहले एकादशीका पारण।

२६ ,, ,, २६ ,, ६ जून शुक्रवार—एकादशी-व्रत।

२७ ,, ,, २७ ,, १० ,, शनिवार—सवेरे ६-२१ से पहले एकादशीका पारण।

३० ,, ,, ३० ,, १३ ,, मंगलवार—पुरुषोत्तम व्रत-समाप्त।

अक्षय तृतीयाके उपलक्ष्यमें

महाराष्ट्र मण्डल मथुरामें श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादकका भाषण

गत १८ अप्रैलको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रधान प्रचारकेन्द्र श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें अक्षय तृतीयाके दिन समितिका स्थापना-दिवस बड़े धूम-धामसे मनाया गया है।

इसी अवसर पर महाराष्ट्र मण्डल, मथुराके विशेष निमन्त्रण पर श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजी मठके ब्रह्मचारियोंके साथ वहाँ पधारे थे। वहाँ पर मठकी कीर्त्तन मण्डली द्वारा संकीर्त्तनके पश्चात् स्वामीजीने अक्षय तृतीयाके सम्बन्धमें एक सारगर्भित एवं प्रभावोत्पादक भाषण दिया। उन्होंने बतलाया कि अक्षय तृतीयाका कई कारणोंसे बड़ा ही महत्व है। इसी दिन भगवान् कल्कि द्वारा बौद्ध-विनाश के पश्चात् सत्ययुग प्रारम्भ हुआ है। किसी-किसी शास्त्रकारोंके मतसे त्रेतायुग भी इसी शुभ दिन से प्रारम्भ होता है। यह सर्व प्रथम दिन है, जबसे वेद-त्रयी द्वारा प्रतिपादित यज्ञका प्रचलन हुआ। इसी दिन भगवानके शक्त्यावेशावतार परशुरामका शुभाविर्भाव भी हुआ था, जिन्होंने भक्त और भागवत विरोधी अधार्मिक समाजको इकीस बार पृथ्वीसे मिटाकर धार्मिक समाजकी स्थापना की थी। आज ही के पुनीत दिन भारत-सम्राट भगीरथकी अथक आराधनासे प्रसन्न होकर भगवती भागीरथी (गङ्गाजी) ने भारतभूमिमें आविर्भूत होकर उसे परम पवित्र बना दिया। आज ही के दिन श्रीश्री-बद्रीनारायणका द्वारा-उद्घाटन होता है। श्रीकृष्णकी चन्दन-यात्राका उत्सव भी (श्रीपुरीधाममें) भी आज ही के दिन बड़े समारोहसे मनाया जाता है। इस प्रकार पुराण और इतिहासोंको देखनेसे पता पता चलता है कि आजका दिन धार्मिक क्रान्तिका दिन है। आज ही के दिन विश्वमें अधार्मिक, निरीश्वर, दुर्नैतिक एवं निरा भौतिक समाजकी सत्ता उखाड़ फेंकी गयी और उसके बदले एक धार्मिक, सेश्वर और पारमार्थिक समाजकी नीव डाली गयी। निरा भौतिक समाज विश्व-ध्वंशका कारण है। दूसरी ओर ईश्वर-विश्वासी धार्मिक समाज विश्व-शान्तिकी आधारशिला है।

सम्पादक महोदयने यह भी बतलाया कि पाश्चात्य रंगमें रंगे अधिकांश लोगोंका विचार यह है कि रूस एवं अमेरिकाने अन्तरीक्षमें मानवको भेज कर विश्व-को एक नये दिव्य युगमें प्रवेश करा दिया है। इस प्रकार आजका विश्व उन्नतिके चरम सोपानकी तरफ अग्रसर हो रहा है। परन्तु मैं पूछता हूँ कि आज भौतिक विज्ञानकी परमचमत्कारपूर्ण उन्नति तो हो रही है—उसमें सन्देह नहीं, परन्तु इससे क्या विश्व शान्तिकी समस्या हल हो चुकी है? क्या भूखे विश्व-की खाद्य-समस्या पहलेसे अधिक खराब नहीं हुई है? क्या रोटी और वस्त्रकी समस्या हल हो गयी है? या हल होने जारही है? क्या रोगोंकी समस्या पहलेसे कुछ घटी है या अधिक भयानक रूपमें ही बढ़ नहीं रही है? क्या विश्वमें भ्रष्टाचार, दुर्नैतिकता, आत्महत्या, ठगी, चोरी, प्रान्तीयतावाद, भाषावाद, जातिवाद, व्यर्थके सत्याग्रह और आन्दोलन आदिकी पेचेदी समस्याएँ नये-नये रूपोंमें सामने नहीं आरही हैं? या समस्याएँ दिन-दिन और भी जटिलसे जटिलतर नहीं हो रही हैं? क्या काँगो, तिब्बत, जापान, कोरिया और स्वेज जैसी शर्मनाक घटनाओंकी समस्याएँ, विश्व-प्रगतिके दम भरनेवालोंकी नाक नहीं काट ली हैं? इस तथाकथित वैज्ञानिक युगमें पशु-पक्षी आदि जो विश्वके ही निरीह प्राणी हैं, तब इनके प्रति हो रही हिंसा और मनमाने अत्याचार ही क्या समता और विश्व प्रेमका दृष्टान्त हैं? शर्म है इस झूँठी और बर्बरतामूलक भौतिक उन्नतिको और उसके नायकोंको।

यथार्थ बात तो यह है कि आजके भौतिक विज्ञानवादी मुखसे चाहे जो कहें, परन्तु कार्यतः वे इस पाँचभौतिक मानव शरीरको ही "मैं" मानते हैं और इस अनित्य मानव शरीरको अमर बनाने तथा उसे अधिक से अधिक सुख पहुँचानेके लिये जीतोड़ परिश्रम कर रहे हैं । पशु-पक्षियोंको वे विश्व-वासी नहीं मानते, उन्हें वे मनुष्यके आहार एवं प्रमोदकी वस्तुमात्र मानते हैं । प्राचीन भारतीय दार्शनिकों, मनीषियों अथवा महर्षियोंने जानबूझ कर समर्थ होते हुए भी भौतिक उन्नति पर कड़ा अंकुश रखा । वे इस भौतिक शरीरको नहीं, बल्कि शरीरमें स्थित पूर्णचित् ईश्वरके अणु-चित्—जीवको 'मैं' मानते हैं । यह अणु चित् जीव एक विशेष कारणसे भगवानसे बिछुड़ कर संसारमें पुनः पुनः जन्म-मरणसे चक्करमें फँस कर जो भयंकर दुःख और क्लेश पा रहा है, उससे सदाके लिये वह कैसे छुटकारा पाकर नित्य सुख और शान्तिको पा सकता है—हमारे भारतीय दार्शनिकों या अध्यात्म-तत्त्व वैज्ञानिकोंका सारा ध्यान इसी पर केन्द्रित था । साथ ही आध्यात्मतत्त्व-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये अपरिहार्य सहायक इस मानव-शरीरको सुखी और निरोग रखनेके कार्योंसे भी बिलकुल विमुख नहीं थे । वे भौतिक विज्ञानमें भी बढ़े चढ़े थे । आजसे करोड़ों वर्ष पहले रावण और मेघनाद आदि अन्तरीक्ष और पातालमें सर्वत्र बिना किसी यान या विमान अथवा राकेटकी सहायतासे ही विचरण करते थे । अगस्तमुनिने एक चुल्लूमें ही सात-समुद्रोंके जलको पी लिया था । महर्षि वेदव्यास जी दृष्टिसे ही पुत्र-कन्या उत्पन्न किये । शुक्राचार्यने बार-बार युद्धोंमें मरे हुए असुरोंको मन्त्र शक्तिसे जीवनदान कर दिया । वर्त्तमान भौतिक विज्ञान तो उस करोड़ों वर्ष पूर्वके विज्ञानके सामने कुछ भी नहीं है । फिर भी वे लोग भौतिक विज्ञान पर अंकुश लगा कर रखते थे । इसीलिये अध्यात्मपक्षको दबा कर भौतिक समृद्धिको बढ़ावा देने वाले रावण मेघनाद, हिरण्यकशिपु, मयदानव आदिको प्राचीन संस्कृतिमें असुर कहा गया है । हमारे पूर्वज इस बातको भली प्रकार जानते थे कि ईश्वर-विश्वास-रहित परमार्थशून्य केवल भौतिक समृद्धि होनेसे अध्यात्मपक्ष अवश्यमेव उपेक्षित होगा ही । साथ ही ध्वंश भी अनिवार्य होगा । इसीलिये वे सादा जीवन उच्च विचारका आदर करते हुए प्रत्येक जीवको जन्म-मरणके चक्कर से सदाके लिये छुड़ा कर नित्य भगवत-तत्त्व विज्ञानोंमें प्रतिष्ठित करनेकी ही चेष्टा करते थे ।

यदि हम विश्वको बर्बादीसे बचाना चाहते हैं, तो हमें भी एक होकर आजके पुनीत तिथिको ईश्वर-विमुख समाजकी सत्ताको उखाड़ फेंककर प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप आध्यात्मविज्ञान पर आधारित धार्मिक समाजकी पुनः प्रतिष्ठाके लिये प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी । तभी सारे विश्वमें सच्ची शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है ।

स्वामीजीके भाषणके पश्चात् श्रीश्रीविट्ठल भगवान् की सन्ध्यारति हुई । उस समय स्वामीकी अध्यक्षतामें जो भावपूर्ण कीर्तन और नृत्य हुआ, उससे सारी सभा मुग्ध रह गयी । तत्पश्चात् महाराष्ट्र मण्डलके अध्यक्ष पां. ग. बोरकरजी, उपाध्यक्ष न० गो० लिमये जी तथा मन्त्री काशीनाथ शास्त्री शहापुरे आदि ने स्वामीजी और ब्रह्मचारियोंका बड़ा ही सत्कार किया । सब लोग एक स्वरसे भाषण और कीर्त्तनकी भूयसी प्रशंसा करने लगे । अन्तमें ८॥ बजे रातमें वहींसे नगर संकीर्त्तन करते-करते स्वामीजी ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीकेशवजी मठमें पधारे । इधर मण्डलमें संगीतके कार्यक्रमके पश्चात् क्रमशः अध्यक्षीय भाषण, आभार प्रदर्शन और राष्ट्रगीतके द्वारा मंडल का वार्षिकोत्सव सुचारुरूपसे सम्पन्न हुआ ।

—निजस्व संवाद-दाता